श्री रामकृष्ण-विवेकानंद भाव-धारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

विवेक शिखा

वर्ष—८ अप्रैल—१९८९ अंक—४

विवेक शिक्षा के आजीवन सदस्य

४१. श्री नीरज गुप्ता — रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी —४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय —४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप —नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति—अमराबती ,,
४८. डॉ० दर्शन लाल—कुराली (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द ढनढनिया — कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे दमोह (म० प्र०)
५१. श्री बी० भी० नागोरी — कलकत्ता (पं० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार वर्मा — समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री चिनुभाई भलाभाई पटेल —खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एम० सी० डाबरीवाला — कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण दत्ता जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेयी - जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय—एलेन गंज, इलाहाबाद
५९. श्री वसन्त लाल जैन —कैथल (हरियाणा)
६०. डॉ० श्यामसुन्दर बोस — दूधपुरा बाजार (समस्तीपुर)
६१. श्री केशव दत्त वशिष्ठ —हिसार (हरियाणा)
६२. श्री के० सी० बागरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
६३. मधु खेतान—कलकत्ता (प० बंगाल)
६४. प्रधान अध्यापिका —डोरांडा गर्ल्स हाई स्कूल, राँची
६५. रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम—मद्रास
६६. श्री विनयशंकर सिन्हा—दाऊदपुर, छपरा
६७. रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम —इलाहाबाद
६८. श्रीमती मीरा मित्रा —इलाहाबाद
६९. स्वामी शान्ति नाथानन्द—रामकृष्ण मठ,इलाहाबाद
७०. श्रीमती उषा श्रीकांत रेगे - दादर, बम्बई
७१. कुमारी इन्दु जोशी उत्तरकाशी (उ० प्र०)
७२. श्री के० अनूप - रोइंग (अरुणाचल प्रदेश)
७३. गंगा सिंह महाविद्यालय—छपरा (बिहार)
७४. डॉ० उषा वर्मा छपरा (बिहार)
७५. श्री विजय कु०प्रभाकर राव शंखपाल (महाराष्ट्र)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्रीरामकृष्ण ने कहा है		१
२. श्रीरामकृष्ण दोहावली		२
३. एक पूर्ण कुम्भ का अवतरण	(सम्पादकीय सम्बोधन)	३
४. श्रीरामकृष्ण देव और धर्म समन्वय	श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज	११
५. श्रीमाँ सारदा देवी के संस्मरण	स्वामी अपूर्वानन्द	१७
६. विवेकानन्द का सपना और हम	स्वामी आत्मानन्द	२३
७. एकान्तवास एवं निर्जन में साधना	स्वामी ब्रह्मेशानन्द	२६
८. स्वामी विवेकानन्द : मनीषियों की दृष्टि में		२९
९. विवेक चूड़ामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	३१
१०. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा	चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय	३२

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष — ८ अप्रैल — १९८९ अंक — ४

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा' ॥

संपादक
डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक
शिशिर कुमार मल्लिक
श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय ।
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	३०० रु०
वार्षिक	२५ रु०
रजिस्टर्ड डाक से	४० रु०
एक प्रति	३ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जिस प्रकार कुम्हार के यहाँ हण्डी, गमले, सुराही, संकोरे आदि भिन्न-भिन्न वस्तुएँ होती हैं, परन्तु सभी एक ही मिट्टी की बनी होती हैं; उसी प्रकार ईश्वर एक होते हुए भी देश-काल आदि के भेदानुसार भिन्न-भिन्न रूपों और भावों में प्रकट होते हैं।

(२)

यदि कोई ईश्वरीय रूपों को कल्पना समझकर उन पर विश्वास न भी करे तो कोई बात नहीं। वह यदि जगत् का सृजन-नियमन करनेवाली ईश्वरीय शक्ति पर विश्वास रखते हुए व्याकुल चित्त से प्रार्थना करे कि 'हे भगवान्, मैं तुम्हारा स्वरूप नहीं जानता, तुम जैसे हो वैसे ही मेरे सामने प्रकट होओ,' तो उस पर भगवान् अवश्य कृपा करते हैं।

(३)

विषयी लोगों की पूजा, जप, तप सब कुछ सामयिक होता है, टिकता नहीं। जो लोग ईश्वर के सिवा और कुछ नहीं जानते वे सांस-सांस में उनका नाम लेते रहते हैं। कोई मन ही मन सतत् 'ॐ राम ॐ' जपता रहता है। ज्ञानमार्गी साधक 'सोऽहम्' 'सोऽहम्' जपता रहता है। किसी किसी की जीभ तो सदा हिलती ही रहती है।

(४)

सभी स्त्रियों को अपनी माता की तरह देखो। कभी स्त्रियों के चेहरे की ओर नजर न डालो, सदा उनके पैरों की ही ओर दृष्टि रखो। ऐसा करने पर कोई कुभाव नहीं आ पाएगा।

श्रीरामकृष्ण—दोहावली

डॉ० केदारनाथ लाभ

तप्त कनक-सी मुख-विभा, रक्त-कमल-से नैन
चन्द्र-हास, मधु के सरिस, रामकृष्ण के बैन ॥१

ढूँढ़ ढूँढ़ कर थक गया, मिली न उपमा एक
रामकृष्ण के सदृश हैं, रामकृष्ण ही एक ॥२

मैंने मन के श्रवण से, रामकृष्ण-संगीत
सुने, आत्म-विस्मृत हुआ, जीवन हुआ अभीत ॥३

देखा, मन के नयन से, रामकृष्ण का हास
शरद-चन्द्र-चुम्बित यथा, समाधिस्थ कैलास ॥४

यह कैसा अपरूप है, रामकृष्ण का रूप
ज्यों हिमगिरि के शृंग पर, बालारुण की धूप ॥५

साँसों में माँ सारदा, दृष्टि विवेकानन्द
रोम रोम में रम रहे, रामकृष्ण सुख-कन्द ॥६

मैं खोया था रूप-रस, राग-रंग के बीच
तुमने करुणामय लिया, मुझे कीच से खींच ॥७

ठाकुर, तुमने हर लिया, मेरा यह संसार
अब तो निज पद-धूलि पर, दो अखंड अधिकार ॥८

मैं हो गया अवैतनिक, रामकृष्ण का भृत्य।
अब उनका संकेत है, पल-पल मेरा नृत्य ॥९

'रामकृष्ण निलयम्' हुआ तेरे घर का नाम।
मेरे मन! हो जा स्वयं रामकृष्ण का धाम ॥१०

●

सम्पादकीय सम्बोधन

एक पूर्ण कुम्भ का अवतरण और प्रयोजन

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

महाभारत के आदि पर्व और श्री मद्भागवत के अष्टम स्कन्ध में समुद्र मंथन के द्वारा अमृत कलश प्राप्ति की कथा का मोहक वर्णन हुआ है। संक्षेप में कथा इस प्रकार है। मेरु पर्वत की एक रत्न खचित चोटी पर एकत्र हो देवताओं ने अमृत प्राप्ति के लिए निर्णय किया कि देवता और असुर मिलकर समुद्र-मंथन करें। इस मन्थन के फलस्वरूप अमृत की प्राप्ति होगी। अतएव, देवता और असुरों ने मन्दराचल को मथानी और वासुकि नाग की डोरी बनाकर समुद्र मन्थन प्रारम्भ किया। इस मन्थन से अगणित किरणों-वाला, शीतल प्रकाश से युक्त चन्द्रमा प्रकट हुआ। फिर भगवती लक्ष्मी और सुरा देवी निकलीं। तदुपरान्त उच्चैःश्रवा घोड़ा, कौस्तुभ मणि, कल्पवृक्ष और कामधेनु की प्राप्ति हुई। लक्ष्मी, सुरा, चन्द्रमा उच्चैःश्रवा—ये सब आकाश मार्ग से देवताओं के लोक में चले गये। और फिर एक अलौकिक पुरुष प्रकट हुआ। उसके हाथों में अमृत से भरा कलश था—

अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद वलयभूषितः।
स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांश सम्भवः॥

(श्रीमद्भागवत ८।८।३४)

अर्थात् "उसके हाथों में कंगन और अमृत से भरा कलश था। वह साक्षात् विष्णु भगवान के अंशांश अवतार थे।" ये ही आयुर्वेद के प्रवर्तक धन्वतरि के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस पीयूष कलश अर्थात् अमृत कुम्भ को देखकर उसे प्राप्त करने के लिए देवताओं और असुरों में संग्राम छिड़ गया। इसी समुद्र मन्थन से ऐरावत हाथी और कालकूट भी निकले और लोक कल्याण के लिए इसी हलाहल का पान कर शिव "नीलकंठ" के नाम से विभूषित हुए।

अमृत कुम्भ : एक प्रतीक

'समुद्र मन्थन से जो अमृत निकला वह हमारे लिए आज किस काम का है? यह प्रश्न हो सकता है। आधुनिक वैज्ञानिक युग का मानव अनन्त समस्याओं के द्वारा घिरा है। उसे अमृत कुम्भ नहीं, हलाहल ही हाथ लगा हो जैसे! नाभिकीय युद्ध की संभावनाएँ, प्रक्षेपास्त्रों की भरमार, मानसिक तनाव और त्रासदी, मादक द्रव्यों, अपराध वृत्तियों और मुक्त यौनाचारों के साथ आर्थिक अभाव और सामाजिक बन्धन—ये ही कुछ तो मिले हैं आज के मानव को। हम आज आसुरी सम्पदा के स्वामी हो गये, दैवी विभूतियों के नहीं। किन्तु ध्यान देने पर लगता है कि अमृत कुम्भ एक प्रतीक है।

अमृत है हमारा मूल स्वरूप, हमारी नित्य चैतन्य आनन्दमय सत्ता, हमारी सनातन अखण्ड दिव्यता। यह दूध में घृत की भांति सब में सर्वत्र व्याप्त है। इसे मन की मथानी से निरन्तर मथकर प्राप्त कर लेना चाहिए।

"धृतमिब पयसि निगूढ़म् भूते-भूते वसति विज्ञानम् मनसा मन्थन-भूतेन ।
सततं मन्थयितव्यम् मनसा मन्थान भूतेन ॥
(अमृत विन्दु उप० २०)

पुनः आनन्द स्वरूप अविनाशी परब्रह्म को भी अमृत कहा गया है, मुण्डकोपनिषद में इसका भव्य—मनोरम उल्लेख है ।

मनोमय प्राण शरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय ।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतंयद्विभाति ॥
(मुण्डक २।२।७)

अर्थात् परब्रह्म परमात्मा सब के प्राण और शरीर का नेता है, मन में व्याप्त होने के कारण मनोमय है । वही हृदय कमल का आश्रय लेकर अन्नमय स्थूल शरीर में प्रतिष्ठित है । जो आनन्द स्वरूप अमृतस्वरूप अविनाशी परब्रह्म सर्वत्र प्रकाशित है, बुद्धिमान मनुष्य विज्ञान के द्वारा उसको भली भाँति प्रत्यक्ष कर लेते हैं ।

इस अमृत को प्राप्त करने के लिए ही ऋषि बार-बार हमारा आह्वान करते हैं—

यस्मिन्द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः ।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुंचथामृतस्यैष सेतुः ।
(मुण्डक २।२।५)

अर्थात् जिसमें स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा समस्त प्राणों के साथ मन गुथा हुआ है, उसी एक सबके आत्मस्वरूप परमात्मा को जानो, दूसरी सब बातों—ग्राम्यचर्चाओं—को छोड़ दो । वे सब तुम्हारे साधन में विघ्न हैं, अतः उनसे विरक्त होकर साधन में तत्पर हो जाओ । यही अमृत का सेतु है यानी संसार समुद्र से पार होकर अमृत स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करने के लिए पुल के समान है ।

तात्पर्य यह है कि यह संसार एक विराट समुद्र है । परमात्मा रूपी अमृत कलश इसमें ही निहित है । इसे मन की मथानी से मथकर निकाल लेना ही हमारा कर्तव्य है । जब तक इस अमृत घट को प्राप्त नहीं कर लेते, हमारे क्लशों, तापों और भोगैषणाओं का अंत नहीं ।

वर्तमान तनावग्रस्त, शंकाकुल, संत्रास-भय युक्त, भोगोन्मुख मानव के लिए एक ही मुक्ति का मार्ग है, एक ही अमृत-सेतु है—उस अमृत से भरे कलश को—पूर्ण कुम्भ को—प्राप्त कर लेना । चाहे इसके लिए कितनी ही साधनाएं, कितने ही तप, कितनी ही चेष्टाएं क्यों न करनी पड़ें ।

अमृत का जो पूर्णकुम्भ संसार-सागर में है, वही हमारे चित्-समुद्र में भी है । जो बाह्य जगत में है, वही अन्तर्जगत् में भी है, जो बाह्य प्रकृति में है, वही अन्तर्प्रकृति में भी है । हम अन्तर्साधना के द्वारा, एकाग्र चित्तता के द्वारा, विवेक बुद्धि के द्वारा अपने चित्-सिन्धु में निहित अमृत कुम्भ का उद्घाटन कर आनन्द के आलोक-लोक में स्वयं को सदा के लिए प्रतिष्ठित कर ले सकते हैं ।

श्रीरामकृष्ण : एक पूर्ण कुम्भ

वर्तमान युग में, आज से प्राय: डेढ़ सौ वर्ष पूर्व श्री रामकृष्ण के रूप में एक पूर्ण कुम्भ का, एक पूर्ण अमृत कलश का अवतरण हुआ था –अखिल मानवता के मंगल के लिए, लोक शोक को दूर कर उन्हें अखंड आनन्द के कैलाश पर प्रतिष्ठित करने के लिए, जीवत्व को शिवत्व प्राप्त कराने के लिए तथा समस्त धर्मों में निहित एक ही चिरन्तन सत्य की प्रत्यक्षानुभूति कराने के लिए।

स्वामी विवेकानन्द ने उनका स्तवन करते हुए उन्हें शक्ति-समुद्र से उठी हुई महान तरंग के स्वरूप, प्रेम की लीला दिखाने वाले तथा संशय-राक्षस के नाश के लिए महा अस्त्र के रूप में स्मरण करते हुए उन्हे भव-वैद्य कहा है

शक्ति समुद्र समुत्थ तरंग दर्शित प्रेम विजृम्भितरंगम् ।
संशयराक्षसनाशमहास्त्रं यामि गुरुं शरणं भव वैद्यम् ।।

अर्थात् जो महाशक्ति रूपी समुद्र से उत्थित तरंगस्वरूप हैं, जिन्होंने प्रेम की असीम लीलाएँ दिखायी हैं, जो सन्देह रूपी राक्षस के विनाश के लिए महाअस्त्र स्वरूप हैं,उन संसार-रोग के चिकित्सक गुरु की शरण में मैं जाता हूँ।"

श्री रामकृष्ण ने नर-देह धारण कर अथक साधनाओं के द्वारा अपने परमात्मा रूप का, अपने सच्चिदानन्द घनस्वरूप का, अपने भीतर निहित पूर्ण अमृत कुम्म का उद्घाटन किया था। और जो भी अपने में निहित अमृत कुम्भ का उद्घाटन कर लेता है वह स्वयं अमृत कुम्म हो जाता है। परमात्मा हो जाता है। इसी से गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं—"जानत तुम्हहि तुम्हहि होई जाई।',

पूर्ण कुम्भ के अभिज्ञान की कठिनता

श्री रामकृष्ण एक पूर्ण अमृत कुम्म थे, अर्थात् स्वयं अवतार थे, इसे यद्यपि देश विदेश के सुधीजन स्वीकार करने लगे हैं, तथापि सामान्य जन को इसे कबूलने में अभी कठिनाई होती है और वे उन्हें एक महापुरुष मात्र मानने को तैयार होते हैं। इसके कारण भी हैं

प्रथम तो अवतार को पहचानना ही कठिन होता है। स्वयं श्री रामकृष्ण ने कहा है कि नर लीला मे विश्वास करना बड़ा कठिन है। भगवान मनुष्य की भाँति चलते फिरते है, खाते-पीते हैं, उनको जन्म मृत्यु, रोग-शोक होते हैं, यह सब देखकर कौन सोचेगा कि वे अवतार हैं? क्यों कि जिसे मनुष्य की भाँति देखते हैं उसे ही ईश्वर कहने की अपेक्षा एक रोड़े पत्थर को ईश्वर कहना सहज है। पत्थर के टुकड़े में तो कोई परिवर्तन नहीं होता; वह जैसा है वैसा ही रहेगा। उसका सम्मान या अपमान करें, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जस का तस रहेगा। किन्तु अवतार के साथ ऐसी बात नहीं है। उनका जन्म मरण होता है, बुढ़ापा और रोग होते हैं। उनका जीवन व्यावहारिक होता है, फिर ऐसे नर देह धारी को ईश्वर या अवतार कैसे कहा जाय?

फिर अवतार कितने ही हो गये हैं, यदि श्री रामकृष्ण को हम अवतार मानें भी तो अवतारों की संख्या में एक की और तो वृद्धि हो जायेगी किन्तु इससे हमारी स्थिति में तो कोई अन्तर नहीं आयेगा। फिर रामकृष्ण को अवतार मानने का प्रयोजन ही क्या है?

वस्तुतः झूठे अवतारों से बचने की जरूरत भी है। ईसा मसीह कहा करते थे 'Beware of false prophets'—नकली मसीहाओं से सावधान रहो। बात यह है कि श्रेष्ठ साधक हुए बिना अवतार को पहचाना ही नहीं जा सकता है। जब श्री रामचन्द्र का अवतार हुआ था तब मात्र बारह ऋषि उन्हें अवतार के रूप में पहचानते थे, बाकी उन्हें दशरथ पुत्र के रूप में ही जानते थे। श्री कृष्ण को भी उनके जीवन काल में अवतार के रूप में बहुत कम लोग जानते थे। इसी से व्यंग्य में उन्होंने कहा—

"अवजानन्ति मां मूढ़ां मानुषी तनुमाश्रितम्।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम्॥"
(गीता ९।९९)

अर्थात् मोहग्रस्त व्यक्ति मुझे मानव शरीरधारी कहकर मेरी अवमानना करते हैं। वे मेरे परम तत्व वाले रूप को नहीं जानते। इसी से श्री रामकृष्ण कहा करते थे—"हाथी के दाँत दो प्रकार के होते हैं—बाहर दिखाने के लिए एक प्रकार के और भीतर खाने के लिए दूसरे प्रकार के। इसी तरह श्रीकृष्ण जैसे अवतार पुरुषों में दो प्रकार के भाव होते हैं। बाहर तो वे साधारण मनुष्य की तरह दिखाई देते हैं। पर भीतर से वे समस्त कर्म-कोलाहल से परे परम शान्त अवस्था में प्रतिष्ठित रहते हैं।" अतः श्रीरामकृष्ण भले ही बाहर सेह मारी तरह देहधारी हैं किन्तु भीतर से वे एक पूर्ण कुम्भ, पूर्ण ज्योतिर्मय आनन्दघन रूप में ही स्थित हैं। हम साधरण जन उन्हे पहचान नहीं पाते।

प्रश्न यह है कि यदि साधारण जन अवतार को पहचान ही नहीं पाते तो फिर उनके लिए अवतार का प्रयोजन क्या है? इसका उत्तर भी श्रीरामकृष्ण के शब्दों में इस प्रकार दिया जा सकता है—जैसे कोई राजा छद्म वेश धारण कर अपने राज्य में घूमने आता है। यदि वह राजवेश में आवे तो राजा को देख साधारण जन सम्भ्रम से दूर हट जायेगें। प्रजा के साथ राजा का निकट सम्पर्क, आत्मीयता का सम्बन्ध नहीं हो सकेगा। इसी से राजा राजऐश्वर्य को छोड़कर साधारण मनुष्य की वेशभूषा धारणकर आता है ताकि लोग उनसे दूर न हो जायं। वह आता है जन साधारण के हृदय में प्रवेश करने। इसी प्रकार अवतार अपने ऐश्वर्य का त्याग कर जो देह में लोक कल्याण के लिए आते हैं। जिनके लिए ब्रह्म अवतार होकर आते हैं उनके लिए ही वे उनके जैसा ही रूप भी धारण कर लेते हैं।

श्रीमद्भागवत में एक दृष्टान्त के द्वारा इसे समझाया गया है। सरोवर के जल में चन्द्रमा प्रतिबिम्बित होता है। चन्द्रमा के उस प्रतिबिम्ब के साथ मछलियाँ क्रीड़ा करती हैं। उन्हे लगता है कि चन्द्रमा भी मानो उन्हीं की भाँति एक मछली है। इसी प्रकार जब भगवान हमलोगों के बीच शरीर धारण कर आते हैं तब हम लोग उन्हें अपने ही समान मानकर उनके साथ क्रीड़ा करते हैं। धीरे-धीरे वे हमलोगों को उन्नत करते हैं, पवित्र, उदार और निर्मल कर देते हैं। हमारे चित को शुद्ध कर देते हैं। धीरे-धीरे प्रभु का ऐश्वर्य हम लोगों के लिए स्वाभाविक हो जाता है। साधारण रूप में आये भगवान धीरे-धीरे अपनी असाधरणता हमारे समक्ष प्रकट करते हैं। इस प्रकार वे हमें भी सीमा से असीम की ओर, खंडत्व से अखंडत्व की ओर और अपूर्णता से पूर्णता की ओर ले जाकर हमारे भीतर निहित दिव्यता का उद्घाटन कर हमें धन्यता प्रदान करते हैं।

श्रीरामकृष्ण ने हमलोगों के अभ्युत्थान के लिए ही अपने ऐश्वर्य का त्याग कर नर देह को

वरण किया था। वे आये थे अपने जीवन और संदेशों के द्वारा हमारे जोवन को नये आलोक से आलोकित करने, नयी प्रेरणा से प्रेरित करने और नयी दिशा की ओर महाभिनिष्क्रमण करने की भावना उत्पन्न करने।

श्रीरामकृष्ण : अवतारत्व का प्रयोजन

श्रीरामकृष्ण युगावतार थे। नवयुग को ये नयी चेतना प्रदान करने आये थे। प्रत्येक व्यक्ति का उद्देश्य है ईश्वर-लाभ करना, सभी धर्मों में एक ही सत्य की अभिव्यक्ति हुई है, जीव की शिव ज्ञान से सेवा करना और ईश्वर का स्मरण करते हुए संसार के कर्म करना—ये कुछ ऐसे विन्दु है जिन पर श्रीरामकृष्ण ने नये सिरे से प्रकाश डाला है।

१. ईश्वर लाभ ही जीवन का उद्देश्य

श्रीरामकृष्ण ने बचपन में ही उस विद्याध्ययन का बहिष्कार किया था जिससे आटा-दाल तो मिल सकते हैं पर भगवान लाभ नहीं हो सकता। उन्होंने स्वयं पहले ईश्वर की प्राप्ति की फिर अन्य कर्म। इसलिए उनकी धारणा थी कि इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर जो जीवन में ईश्वर लाभ के लिए चेष्टा नहीं करता, उसका जन्म लेना ही व्यर्थ है। वे कहा करते थे—"मुसाफिर को नये शहर में पहुँचकर पहले रात विताने के लिए सुरक्षित डेरे का बन्दोवस्त कर लेना चाहिए। डेरे में अपना सामन रखकर वह निश्चित होकर शहर देखते हुए घूम सकता है। परन्तु यदि रहने का बन्दो-वस्त न हो तो रात के समय अन्धेरे में विश्राम के लिए जगह खोजने में उसे बहुत तकलीफ उठानी पड़ती है। उसी प्रकार इस संसार रूपी विदेश में आकर मनुष्य को पहले ईश्वर रूपी चिर विश्रामधाम को प्राप्त कर लेना चाहिए, फिर वह निर्भय होकर अपने नित्य कर्त्तव्यों को करते हुए संसार में भ्रमण कर सकता है। किन्तु यदि ऐसा न हो तो जब मृत्यु की घोर अन्धकार पूर्ण भयंकर रात्रि आएगी, तब उसे अत्यन्त क्लेश और दुःख भोगना पड़ेगा।"

आज का मानव भोग-विलास, विषय-वासना, हिंसा, स्वार्थ आदि के चक्रवाल में फंसकर छटपटा रहा है। कारण है, वह जीवन जीने की कला नहीं जानता। यह कला है पहले ईश्वर लाभ कर लेना फिर सांसारिक कार्यों का निष्पादन करना। जब हम ईश्वरोन्मुख होते हैं, तब जगत् का स्वरूप हमारे लिए बदल जाता है। यह भोग भूमि न होकर योग भूमि हो जाता है। जब हम राम में आश्रित होते है, तब काम का विकार मिट जाता है। तब संसार का कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र में बदल जाता है। जो शिव को उपलब्ध कर लेता है उसे हर जीव शिव ही दिखाई पड़ता है। फिर उसका हर कर्म सृष्टि को सुन्दर बनाने की साधना हो जाता है, उसके लिए जगत् निष्काम कर्म का यज्ञ- स्थल बन जाता है। फिर ऐसे प्राणी के जीवन में अशान्ति कहाँ? इसी से श्रीरामकृष्ण कहते हैं—पहले ईश्वर लाभ करो, फिर, धन कमाना इसके विपरीत पहले धन लाभ करने को कोशिश मत करो। यदि तुम भगवत्प्राप्ति कर लेने के बाद संसार में प्रवेश करो तो तुम्हारे मन की शान्ति कभी नष्ट नहीं होगी।"

२. सर्व धर्म समन्वय : यतो मत ततो पथ

यह श्रीरामकृष्ण ही थे जिन्होंने सर्व प्रथम हमें बताया कि सभी धर्म एक ही सत्य को घोषणा

करते हैं। अन्तर अनुष्ठानों और पूजा उपासना की पद्धतियों में है, मूल धर्म में नहीं।

आज धर्म को लेकर जितने संघर्ष होते हैं जितनी हत्याएं होती है जितना विद्वेष फैलाया जाता है, उससे खीझकर लोग यह सोचने लगते हैं कि सारे अनर्थों की जड़ धर्म ही है। कुछ देशों ने इसलिए यह प्रयोग शुरू किया है कि समाज में धर्म का स्थान ही न हो।

किन्तु धर्म उपासना पद्धति में नहीं, आचरण के सौन्दर्य में है, अनुभूति की प्रामाणिकता में है। स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे—"तुम इस बात को ध्यान में रखो कि धर्म न बातों में है, न सिद्धान्तों में और न पुस्तकों में, वह है प्रत्यक्ष अनुभव में। वह "सीखना" नहीं है, "होना" है। "चोरी मत करो" इसे सब जानते हैं, पर इससे क्या? इसे तो यथार्थ में उसी ने जाना, जिसने चोरी नहीं की। ......साक्षात्कार या प्रत्यक्षानुभूति की यह शक्ति ही धर्म की निर्णायक है। अपने मस्तिष्क में सिद्धान्तों दर्शनों और नैतिक पुस्तकों को जितना चाहे ठूँस लो, उससे कुछ लाभ नहीं होने का, असली चीज है—वह जो तुम हो तथा वह सत्य, जिसे तुमने उपलब्ध किया है।"

श्रीरामकृष्ण ने विभिन्न धर्मों की दीर्घ साधना कर इस सत्य की प्रत्यक्षानुभूति की थी कि सभी धर्म एक ही ईश्वर की ओर ले जाने के अलग-अलग पथ हैं। इसी से उन्होंने धर्मान्धों को एक नयी दृष्टि दी एक नया दर्शन दिया, एक अभिनव मंत्र दिया—"यतो मत ततो पथ'। यह एक महावाक्य है। धर्म के एकत्व, की घोषणा तो श्रीरामकृष्ण के पूर्व भी अनेक सत्पुरुषों तथा अनेक सदग्रन्थों ने की थी किन्तु उनमें अनुभूति की प्रामाणिकता नहीं थी। श्रीरामकृष्ण के पास अनुभूति की विभूति थी। इसी से उनके कथन में प्रामाणिकता, ईमानदारी, तलस्पर्शिता और आन्तरिकता है। अन्य संत या महापुरुष हमें अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता सिखाते हैं। किन्तु श्रीरामकृष्ण अन्य धर्मों की स्वीकृति की शिक्षा देते हैं। सहिष्णुता और स्वीकृति में गहरा भेद है। किसी की उद्दण्डता, उच्छृंखलता या दुराचार को हम सह ले सकते हैं। किन्तु उसे स्वीकार नहीं सकते। स्वीकृति तो एक सहज आन्तरिक वृत्ति है। श्रद्धा और आस्था के अभाव में स्वीकृति का शतदल नहीं खिलता। श्रीरामकृष्ण अन्य धर्मों की स्वीकृति का सुरम्य संदेश देकर, समस्त धर्मों के बीच के अन्तराल को मिटाने का एक स्निग्ध सेतु हो गये हैं। वे कहते हैं।—"जैसे कालीघाट के काली मंदिर में जाने के लिए बहुत से रास्ते हैं। वैसे ही भगवान के घर जाने के लिए भी बहुत से रास्ते हैं। हर एक धर्म एक राह है।" उनके इस कथन में कितनी विश्वसनीयता है—"सभी सियारों की पुकार एक सी होती है। सभी ज्ञानियों का उपदेश एक ही होता है।"

संत कबीर से लेकर महात्मा गांधी तक सबने भारत में धर्मों की खाई पाटने के लिए अपने-अपने सबल सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि यदि इस देश में कभी धर्म के बीच का विद्वेष और वैर समाप्त होगा तो वह श्रीरामकृष्ण के बताये मार्गों पर चलकर ही, उनके उपदेशों को अपने जीवनाचार में उतारकर हो। इतना ही नहीं, आज तो विश्व के कई विख्यात विज्ञानि, प्रखर चिन्तक और प्रख्यात मनीषी यह मानने लगे हैं कि संसार में किसी एक धर्म को स्वीकार किया जाय तो वह श्रीरामकृष्ण का धर्म ही होगा और यदि किसी एक ईश्वर को सबके ईश्वर के रूप में स्वीकार किया जाय तो वह स्वयं श्रीरामकृष्ण ही होंगे।

२. शिवज्ञान से जीव सेवा

एक दिन श्री चैतन्यदेव द्वारा प्रवर्तित वैष्णव धर्म की चर्चा के प्रसंग में श्रीरामकृष्ण ने कहा — "इस मत में मनुष्य को इन तीन बातों का पालन करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने का उपदेश दिया जाता है—भगवान के नाम में रुचि, जीवों पर दया, वैष्णवों का पूजन । जो नाम है वहा, ईश्वर है, नाम और नामी अभिन्न हैं—यह जानकर सदा अनुराग सहित नाम लेते रहना चाहिए। कृष्ण और वैष्णव, भक्त और भगवान अभिन्न हैं यह जानकर सदा साधु भक्त जनों की श्रद्धा पूर्वक सेवा-वन्दना करनो चाहिए, यह जगत् संसार श्रीकृष्ण का ही है इस बात की हृदय में धारणा कर सब जीवों पर दया"……। सब जीवों पर दया, इतना कहते ही श्रीरामकृष्ण एकाएक समाधिस्थ हो गये। फिर कुछ देर बाद अर्द्धबाह्य अवस्था में आकर कहने लगे "जीवों पर दया ? जीवों पर दया ? धत् मूर्ख। तू स्वयं कीटानुकीट होकर जीवों पर दया करेगा ? दया करने वाला तू कौन है ? नहीं, नहीं, 'जीवों पर दया नहीं – शिव बुद्धि से जीवों की सेवा।"

वैषम्य और भेद बुद्धि से ग्रसित वर्तमान युग के मानव समूह के लिए यह एक महामंत्र है जो उस दिन श्रीरामकृष्ण ने कुछ भक्तों के बीच प्रदान किया था। इसे बीज मंत्र कह सकते हैं। क्यों ? दया और सेवा में अन्तर है। दया करने से दया के जिस पात्र पर हम दया करते हैं, उसे अपने से हीन और असहाय समझते हैं। इससे हमारे मन में अहंकार जगता है और भेद बुद्धि उपजती है। फिर दया करके हम अपने अंहकार को तुष्ट करते हैं और एक प्रकार का भोग ही भोगते हैं। इस प्रकार दया का भाव हमें गिराता है जब कि सेवा का भाव, जीव को शिव मानकर उसकी सेवा करने का भाव हमें पूजा की स्थिति में ला खड़ा करता है। पूजा में अंहकार कैसा ? इस भाव में आने पर जिसकी हम सेवा करते हैं वह हमारा कृतज्ञ नहीं होता बल्कि हम उसके कृतज्ञ होते हैं। क्योंकि उसने हमें अवसर प्रदान किया कि उसके चरणों पर हम सेवा के कुछ सुमन अर्पित करें। स्वभावतः सेवा, शिव-ज्ञान से जीव सेवा का भाव हमारे अहंकार को झाड़ता है, हमारे चित्त को शुद्ध करता है। और निरहंकृत शुद्ध चित्त और शुद्ध ज्ञान में भेद नहीं है। शुद्ध हृदय पुरुष ही परमात्मा है। अतः सेवा हमें ब्रह्मत्व में रूपान्तरित करने का सर्वोत्तम साधन है।

श्री रामकृष्ण के इस सेवा मंत्र को नरेन्द्र नाथ (कालान्तर में स्वामी विवेकानन्द) ने भी सुना था और सुनते ही इस मंत्र के मर्म को समझकर वे सहसा कह उठे थे—"इस पगले ब्राह्मण के चरणों पर मेरा मस्तक बिक गया।"

जीव सेवा पर बल तो श्री रामकृष्ण के पूर्व भी आचार्यों ने दिया था किन्तु शिव बुद्धि से जीव सेवा का संदेश इनके पूर्व किसी ने नहीं दिया था। सेवा की दृष्टि में ही मौलिक अन्तर है। श्रीरामकृष्ण थे एक अद्भुत आदर्श गुरु। उन्होंने सेवा को पूजा का प्रतिरूप बनाकर प्रस्तुत किया। इससे सेवा भी होती है और अहंकार से बचकर चित्त की शुद्धि भी होती है। भाव यह रहता है कि हम जिसकी सेवा कर रहे हैं वह कोई साधारण जीव नहीं, बल्कि साक्षात शिव ही है। परमात्मा ही सभी जीवों में व्याप्त है। अतः हम प्यासे को नहीं, शिव को पानी दे रहे है, भिखारी को नहीं, शिव को भोजन दे रहे हैं, कोढ़ी को नहीं, शिव की सुश्रूषा कर रहे है—यह भाव है जीव को देखने का।

सेवा जीव रूपी शिव से हमें जोड़ने का सबसे बड़ा साधन है। अतः सेवा सबसे बड़ा योग है।

सेवा का फूल निष्कामता के तपोवन में खिलता है। प्रभु को समस्त जगत् और जीवों में देखने की दृष्टि की डाल पर सेवा की कलिका चटकती है। अतः सेवा सबसे बड़ा ज्ञान है। सेवा शिव की ही अराधना है। अतः सेवा सबसे बड़ी भक्ति है।

सेवा से अधिक निर्मल कोई कर्म नहीं। अतः सेवा सबसे बड़ा कर्म है।

यानी सेवा सर्वोत्तम योग है, महत्तम ज्ञान है, परम भक्ति और शुद्धतम कर्म है।

आज शिव दृष्टि से जीव सेवा करने की जितनी आवश्यकता है उतनी शायद पहले कभी नहीं थी। वर्तमान विभ्रान्ति, पथहारा और विसंगतियों से भरे हुए मूल्य रहित समाज के स्वास्थ्य और सौन्दर्य के संवर्धन के लिए शिव-दृष्टि से जीव-सेवा की आज बड़ी आवश्यकता है। एक डाक्टर अपने रोगियों की शिव दृष्टि से सेवा करे, शिक्षक अपने छात्रों में कोमलमति शिव का दर्शन कर उन्हें शिक्षा दे, राजनेता जनगण में विराट शिव का साक्षात्कार कर उनकी निस्पृह सेवा करें। दफ्तर का अफसर और कर्मचारी, कारखाने का मालिक और मजदूर तथा खेतों में कार्यरत किसान हर कोई शिव के लिए सेवा करने लगे, तब हमारे समाज और राष्ट्र का रूप और स्वरूप कितना सुन्दर, सुघड़ और कितना भद्र हो जायेगा। इसकी सहज कल्पना की जा सकती है।

श्रीरामकृष्ण और आगत शताब्दी

आज वैज्ञानिकता पर जोर है। अगली सदी विज्ञान की सदी होगी। विज्ञान कहीं हमें हृदय-हीन न कर दे, यह आशंका है। पर वैज्ञानिक-दृष्टि की हम उपेक्षा नहीं कर सकते। विज्ञान के दो पक्ष हैं—फलमय विज्ञान (Science as fructifera) और ज्योतिर्मय विज्ञान (Scienee as lucifera) श्रीरामकृष्ण ज्योतिमर्य विज्ञान के साधक थे। इसी से वे जगत में व्याप्त परम चैतन्य से एकमेक हो गये, सान्त होकर अनन्त से समरस हो गये। यही कारण है कि डाल पर लगे फूल उन्हें ईश्वर पर चढ़े दीखते थे, दूब पर चलने से उन्हें कष्ट होता था और किसी मछुआरे की पीठ पर चोटें लगने पर दाग उनकी पीठ पर उभर आता था। यानी विश्व चेतना से वे एकमेक हो गये थे। इक्कीसवीं सदी में यदि हमने यह दृष्टि नहीं पायी तो हमारी वैज्ञानिकता का दावा खोखला ही बना रहेगा।

अब तक के अवतार श्री राम, श्री कृष्ण, बुद्धदेव, मुहम्मद आदि जन्म से ही श्रीसम्पन्न थे। राजे-महाराजे थे। वे बड़े थे और मानव की तरह उन्होंने आचरण किया था। किन्तु श्रीरामकृष्ण जन्म से निर्धन थे, द्ररिद्र थे। वे जन्म से मनुष्य थे और ईश्वर की भाँति उन्होंने आचरण किया था। एक साधरण मनुष्य स्वयं को कैसे ईश्वर बना सकता है—श्री रामकृष्ण ने इसे अपने जीवन में प्रदर्शित कर दिखाया। हम मनुष्य हैं भोग के लिए नहीं, हम मनुष्य हैं देवत्व में रूपान्तरित होने के लिए। और स्वयं देवता बनकर श्रीरामकृष्ण संतुष्ट नहीं होते। श्रीसारदा देवी को पूजा करके उन्हें मानुषी से भवतारिणी बना देते हैं। अर्थात् स्वयं देवता बन जाना काफी नहीं है, सब को देवता बनाना होगा। यही है सही सत्यानुसन्धान की दृष्टि, इक्कीसवीं सदी में यदि इस दृष्टि के साथ हम नहीं प्रवेश करते हैं तो विज्ञान अधूरा ही रह जायगा।

सब के प्रभु श्रीरामकृष्ण

एक बार श्री माँ सारदा ने किसी अपवित्र नारी के हाथों छुलाया गया भोजन श्रीरामकृष्ण को परोस दिया। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने कहा ।-"देख, यह खाना खाया नहीं जाता। वादा करो कि अब से किसी अपवित्र व्यक्ति के हाथों स्पर्श किया हुआ भोजन मुझे नहीं दोगी।" श्री माँसारदा ने श्रीरामकृष्ण से कहा—"नहीं, ऐसा वादा मैं नहीं कर सकती। फिर तुम केवल मेरे ही ठाकुर तो नहीं हो, सब के ठाकुर हो।" माँ ने मानो उस दिन एक चिरन्तन सत्य की घोषणा कर दी थी। श्रीरामकृष्ण सबके ठाकुर है, सब के प्रभु हैं। वे आये थे शुद्ध सत्व लेकर। अन्य अवतारों में रज। है। पर श्रीरामकृष्ण शुद्ध सत्व के साकार रूप थे। वे आये थे सबको उसी शुद्ध सत्व में प्रतिष्ठित करने, सबको नरता से उठाकर देवता के शिखर पर अधिष्ठित करने । वे कहा करते थे—'तुम सब मेरे पास आओ।" वे वस्तुतः हमारे आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमें तैयार होना है परम प्रभु, एक पूर्ण अमृत कुम्भ, भगवान श्रीरामकृष्ण के पास जाने के लिए ताकि हम देवत्व में स्थित हो सकें। हम जितना ही उन्हें चाहेंगे, जितना ही उनके निकट जायेंगे, हम उतने ही शुद्ध होंगे, उतने ही पूर्ण होंगे, उतने ही चैतन्य को प्राप्त होंगे। अपने लीला-संवरण के कुछ ही दिनों पूर्व उन्होंने हम सबको आश्वासन की वाणी में कहा जो था—"मैं अधिक और क्या कहूँ। तुम सबको चैतन्द प्राप्त हो! जय श्रीरामकृष्ण!

●

श्रीरामकृष्णदेव और सर्व-धर्म समन्वय

—श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज
महाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ और मिशन

आज हम यहाँ पर उन आदर्शों और विचारों पर ध्यान करने के लिए एकत्र हुए हैं, जिनके मूर्तिमान-स्वरूप श्री रामकृष्ण थे। उनका जीवन बड़ा विलक्षण था, क्योंकि जिस धर्म का प्रतिपादन उनके जीवन के माध्यम से हुआ, वह धर्म उतना ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन विश्व की यह रचना।

अथच वह धर्म उतना ही नया और ताजा है जैसे अभी खिला हुआ गुलाब अपने सौरभ का विस्तार करता है। ये दोनों बातें एक-दूसरे की विरोधी होती हुईं भी श्री रामकृष्ण के जीवन में बड़े आश्चर्यजनक रूप से समन्वित हुईं थीं। एक ओर सनातन धर्म का वह आदर्श जो प्राचीन काल से चला आया है, जहाँ पर हम उन आदर्शों को शास्त्रों के माध्यम से प्राप्त करते हैं, वहीं दूसरी ओर उनके जीवन के द्वारा निजधर्म इस प्रकार अभिव्यक्त हुआ कि आज का मानव अपनी बुद्धि और मस्तिष्क से धर्म के उन आदर्शों के द्वारा तृप्ति प्राप्त करता है। यह जो विलक्षण समन्वय उनके जीवन में प्राचीनता और अर्वाचीनता का हुआ

है, यह अपने आप-में एक बड़ी विचित्र बात है।

श्रीरामकृष्ण ने किसी नये सत्य का उपदेश नहीं दिया है और वास्तव में वे तो यह कहा करते थे कि मैं उपदेशक नहीं हूँ। मैं कोई प्रचारक नहीं हूँ। पर उनके जीवन की क्रियाओं से धर्म मानो स्पंदित होता था, ध्वनित होता था।

५ या ६ वर्ष की उम्र थी, तभी उन्हें प्रथम समाधि का अनुभव हुआ था। जैसा कि हम जानते हैं, जिस समय उन्होंने वह सुन्दर दृश्य देखा कि काले मेघ की पृष्ठभूमि में बगुलों की सफेद पंक्ति उड़ती हुई जा रही है तो वे बाह्य संज्ञा खो बैठते हैं और थोड़ी देर के लिए उस स्थिति में अवस्थान करते हैं जिसे हमने समाधि का नाम दिया है। अब यह जो भाव है, यह तो किसी प्रयास के द्वारा प्राप्त हुआ भाव नहीं है, वह उनके जीवन में निसर्गवत् आता है; उनके जीवन का यह भाव किसी साधना का फल नहीं था, यह तो मानो उसी प्रकार उनके लिए स्वाभाविक था, जैसे हम सांस लेते हैं या जैसे हमारी नसों में खून दौड़ता है, ठीक इसी प्रकार की स्वाभाविकता ईश्वर सम्बन्धी भावों के सम्बन्ध में उनकी थी, यह हम श्री रामकृष्ण देव के जीवन के माध्यम से देखते हैं। और उनका जीवन कैसा था? जीवन में कभी ईश्वर के सम्बन्ध में प्रश्न नहीं आया। कभी उन्हें कोई शंका नहीं हुई। उनके ईश्वर तो स्वभावसिद्ध थे। उनकी सांसों में ईश्वर भरा हुआ था और इसीलिए उनके जीवन में कभी हम यह शंका नहीं देखते कि उन्होंने कभी ईश्वर के अस्तित्व पर अविश्वास किया हो। जैसा मैंने कहा कि उनके जीवन में ईश्वर के प्रति विश्वास सांसों के समान स्वाभाविक था ऐसे ही श्री रामकृष्ण थे।

वे दक्षिणेश्वर में आते हैं। जब उनकी साधना शुरू होती है तो वह भी किसी विधि के द्वारा नहीं होती। वह भी मानो अचानक बिना किसी योजना के शुरू होती है। वे जगन्माता की उपासना करते हैं, पर जगन्माता का तात्पर्य उनके लिए क्या था? जगन्माता उनके लिए कोई पाषाणमयी मूर्ति नहीं थी, जो दक्षिणेश्वर के मंदिर में प्रतिष्ठित थी। वे तो उस जगन्माता के दर्शन करना चाहते थे, जो चिन्मयी थी, जो बाहर निकले, जो प्रेममयी हो, जो बातचीत करे और उसी प्रकार स्नेह और दुलार करे, जैसे एक माँ अपने बच्चे के प्रति करती है।

और हम पढ़ते हैं, कितनी आकुलता के साथ उन्होंने जगन्माता को पुकारा और हम यह भी पढ़ते हैं कि जगन्माता के उन्हें दर्शन हुए। और कैसा दर्शन? मानो आनन्द की लहरें एक के ऊपर एक उमड़ रही हो और आनन्द की लहरों में वे समा जा रहे हों। इस प्रकार का दर्शन श्री रामकृष्ण को होता है और जब दर्शन हो गये जगन्माता के तो जगन्माता के तत्व को वे हमारे समक्ष रखते हैं। यह जगन्माता उनके लिए क्या है? यह जगन्माता उनके लिए उस परम सत्य की शक्ति है, जिसे हम महामाया कहते हैं। जिस शक्ति के माध्यम से इस विश्व का सृजन, पालन और संहार होता है, वही वह शक्ति है श्री रामकृष्ण की दृष्टि में और वे उस परम सत्य के साथ अभिन्न हैं। जिसे हम ब्रह्म कहें, परमात्मा कहें वह परम सत्य इसी शक्ति से समन्वित होकर के संसार का संचालन करता है, इस दृष्टि से, महामाया की दृष्टि से उन्होंने जगन्माता की उपासना की। उनके जीवन में धन्यता आयी और फिर इसके बाद हम देखते हैं कि उनके मन में विचार उत्पन्न होता है और वे जगन्माता से प्रार्थना करते हैं और कहते हैं माँ! जिस प्रकार अन्य रास्तों से चलने वाले साधक तुम्हें प्राप्त करते हैं, मैं भी उसी प्रकार तुम्हें प्राप्त करना चाहता हूँ। यह श्री रामकृष्ण की विलक्षणता है। वे जगन्माता के दर्शन से संतुष्ट नहीं रहे, वे

प्रार्थना करते हैं कि जिन पथों से चलकर के दूसरे पथ के साधकों ने उस सत्य के दर्शन किए, उसी सत्य का दर्शन वे भी उन्हीं पथों से चलकर के करना चाहते हैं और इसकी व्यवस्था भी जगन्माता उनके जीवन में कर देती हैं। उनके जीवन में कितने भिन्न-भिन्न मतों और पथों के लोग आते हैं, धर्म के नेतागण आते हैं, और उन्हें उस रास्ते से ले जाते हैं।

हम पढ़ते हैं कि उन्होंने तन्त्र-मन्त्र की साधनाएं कीं और फिर उसके बाद उन्होंने वैष्णव मत की भी साधनाएं कीं, अन्य मतों और धर्मों की भी साधनाएं कीं और अंत में वे अद्वैत मत की भी साधना करते हैं। अद्वैत मत वेदान्त के द्वारा हमारे समक्ष रखा गया है और जिस समय वे साधना करते हैं, उनके जीवन में अद्वैत पर एकान्त निष्ठा रखने वाले तोतापुरी आते हैं। तोतापुरी ने उन्हें गंगा के किनारे बैठा देखा, तब तोतापुरी ने उनसे पूछा कि क्या तुम अद्वैत मत की साधना करोगे ? तो उन्होंने कहा कि मैं कुछ नहीं जानता, मेरी माँ जानती है। तोतापुरी ने कहा तो बच्चे जाओ अपनी माँ से पूछ लो। (तोतापुरी को ऐसा लगा कि इस बालक की माता यहाँ पर मन्दिर-दर्शन के लिए आयी होगी, इसलिए तोतापुरी ने कहा कि जाओ अपनी माँ से पूछ लो।) श्री रामकृष्ण यह सुन करके उठते हैं और द्रुत पदों से काली मन्दिर में जाते हैं और वहाँ जाकर के जो उन्हें पूछना होता है पूछते हैं और लौट करके तोतापुरी से कहते हैं कि माँ ने मुझे अनुमति दे दी है अद्वैत साधना की। तो ठीक है। तुम मुझे अद्वैत मत सिखा सकते हो। तोतापुरी को जब पता लगा कि इतना ऊँचा आधार उस मन्दिर की पाषाणमयी मूर्ति को अपनी माँ कहता है, जगन्माता कहता है, तो उन्हें बड़ा अफसोस हुआ कि ऐसा ऊँचा अद्वैत का आधार। पर इसके भीतर ऐसे कुसंस्कार भरे हुए हैं और तोतापुरी उन कुसंस्कारों को दूर करने का प्रयास भी करते हैं। अद्वैतवाद का शिक्षण देते हैं। और उन्होंने बड़े आश्चर्य से देखा कि जब वे अद्वैत के तत्व की बातें सिखा रहे थे श्री रामकृष्ण को, तो ३ दिनों में ही समाधि लग गयी। जिसे निर्विकल्पक समाधि कहा जाता है। तोतापुरी को जब यह पता चला, परीक्षण के द्वारा कि यह निर्विकल्पक समाधि है तब वे बड़े आश्चर्य में डूब गये और उनके मुख से निकल पड़ा कि जिस निर्विकल्पक को पाने के लिए मैंने अपने जीवन के ४० वर्ष कठोर तपस्या में बिताये, इस बालक ने उसे ३ दिन में ही हासिल कर लिया। यह कैसी दैवी माया है ! इस प्रकार का भाव तोतापुरी के मन में उदित होता है और सचमुच श्री रामकृष्ण विलक्षण-अद्वैत समाधि में मग्न हो गये और फिर उसके बाद वे अपने मन को नीचे लाने का प्रयास करते हैं। तोतापुरी अपने शिष्य के जीवन को देख कर इतने मुग्ध हो जाते हैं कि वे ११ महीनों तक दक्षिणेश्वर में रहते हैं और श्री रामकृष्ण के साहचर्य में आकर उनके सामीप्य में रहकर, वे श्री रामकृष्ण से उपदेश ग्रहण करते हैं। यह भी रामकृष्ण की विलक्षणता थी कि जो भी उनके जीवन में गुरु बनकर आया वही अन्त में उनसे उपदेश लेता हुआ गया। जैसे तोतापुरी का उदाहरण है। तोतापुरी पहले केवल उस अद्वैत और निर्गुण ब्रह्म में विश्वास करते थे। माया में या शक्ति में उनका विश्वास नहीं था। वे शक्ति को मिथ्या कहा करते थे, पर श्री रामकृष्ण के साहचर्य में रहते हुए उन्होंने शक्ति की सत्यता का अनुभव किया। श्री रामकृष्ण अपने गुरु को समझा देते हैं कि जैसे अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति दोनों सत्य हैं। जगन्माता को शक्ति मानता हूँ। तोतापुरी अन्त में इस सत्य के कायल हो जाते हैं और ११ महीने के बाद श्री

रामकृष्ण से विदा लेते हैं।

पर श्री रामकृष्ण का यह बड़ा विलक्षण जीवन है कि वे शिष्य तो हैं कई लोगों के, परन्तु अन्त में वे उन सबके गुरु बन जाते हैं। पर गुरु जो बनते हैं, उनमें किसी प्रकार का गुरु बनने का भाव नहीं है। जैसा पहले कहा, उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि मैं किसी प्रकार का उपदेशक हूँ प्रचारक हूँ। बल्कि मैं यह कहा करता हूँ कि श्री रामकृष्ण ऐसे प्रचारक थे, जिन्होंने कभी प्रचार नहीं किया - यह बड़ी विलक्षण बात मालूम पड़ती है सुनने में। पर श्री रामकृष्ण के सम्बन्ध में यह अत्यन्त सत्य है। इसलिये सत्य है कि श्री रामकृष्ण कभी अपने को प्रचारक मानते नहीं थे, कभी अपने को उन्होंने उपदेशक की दृष्टि से देखा नहीं। वह जो भी उपदेश था, वह तो नैसर्गिक रूप से उनके माध्यम से निकलता था और वह अपने-आपको जगन्माता का यन्त्र मानते थे और वे स्वीकार करते थे कि जगन्माता उनके माध्यम से जो कुछ करना चाहती हैं, करा रही हैं। यह श्री रामकृष्ण की भावना थी। इसीलिए एक दिन का प्रसंग यहाँ पर उल्लेखनीय हो जाता है—एक दिन उन्होंने अपने एक शिष्य से पूछा, "अच्छा बताओ, मुझ में कितना अहंकार दिखाई देता है, अहंकार दिखता है क्या ?" उस शिष्य ने भी जो बहुत दिनों तक संपर्क में रह चुका था, कहा महाराज ! आप में कोई अहंकार नहीं है, पर अपने भीतर थोड़ा-सा अहंकार आपने रख छोड़ा है, जिससे जगत् का कल्याण हो, लोगों का कल्याण हो। श्री रामकृष्ण तुरन्त कहते हैं कि देखो यह अहंकार मैंने नहीं रख छोड़ा है, यह अहंकार माँ ने ही रख दिया है, जिससे माँ अपना कार्य करा सके। यह श्री रामकृष्ण की दृष्टि थी प्रचार के सम्बन्ध में, उपदेश के सम्बन्ध में। यहाँ पर हमने कहा कि श्री रामकृष्ण ने कभी अपने को प्रचारक नहीं माना या किसी प्रकार से अपने को उपदेशक नहीं माना। वे तो यही मानते थे कि वे जगन्माता के यंत्र-स्वरूप थे और जगन्माता उनकी इस देह का आश्रय लेकर, उनके इस शरीर को माध्यम बना करके अपना कार्य करा लेना चाहती हैं। ऐसा वह अद्भुत भाव था, उनके भीतर और इसीलिए हम देखते हैं कि इस भाव को हमने अवतारी पुरुष के भाव के रूप में स्वीकार किया है। किसलिए किया ?

उनकी लीला का संवरण भी बहुत जल्दी हुआ। १८८६ में वे लीला का संवरण कर लेते हैं पर कितने थोड़े दिनों में ही, अल्प दिनों के भीतर में उनके भावों का प्रसार विश्व के कोने-कोने में हो जाता है। सब लोग उनके संबंध में जान लेते हैं। यह बड़ी विलक्षण बात है कि १८८६ में वे इस मृत्यु लोक से जाते हैं पर कुछ ही वर्षों के भीतर में सारा विश्व उनके आदर्शों से, उनके द्वारा उपदिष्ट सत्यों से परिचित हो जाता है। यहाँ तक कि जो लोग श्री रामकृष्ण संघ के केन्द्रों से परिचित नहीं हैं या श्री रामकृष्ण संघ मिशन के किसी साधु के सामीप्य में नही हैं ऐसे लोगों ने भी श्री रामकृष्ण के जीवन के सन्देशों की छाप अपने जीवन में अनुभूत की है। यह भी सत्य है।

तो इसलिए हम कह रहे हैं कि श्रीरामकृष्ण आते हैं युगावतार के रूप में और विवेकानन्द तो यह कहा करते थे कि जब से श्री रामकृष्ण का आगमन हुआ है, सतयुग प्रारम्भ हो गया है। हम देखते हैं कि श्री रामकृष्ण का जीवन ही धर्म का मानो मूर्तिमन्त समन्वय था और धर्म का यही मूर्तिमन्त समन्वय भाव उनके जीवन के माध्यम से प्रस्फुटित होता है। उन्होंने यह जो कहा कि ये सारे धर्म एक ही सत्य को पाने के रास्ते हैं, तो उन्होंने किसी सत्य का सामान्यीकरण नहीं किया। वलिक वह सत्य उनकी अनुभूति का फल था। जीवन में उन्होंने उस सत्य को अनुभूत किया है

और जब इस सत्य की प्रतीति उन्हें हुई स्वयं की अनुभूति के बल पर, तब उन्होंने घोषणा की जैसा कि हमने अभी सुना है—जितने मत उतने पंथ। ये श्री रामकृष्ण के उद्‌गार थे, जो उनकी अनुभूति से निकले थे और वे इस धर्म को अपने जीवन के माध्यम से संसार के समक्ष रखते हैं।

यह ठीक है कि उनका विश्वास क्रिया-अनुष्ठान में विशेष नहीं था, यह धर्म का एक भाव है, जिसमें हम क्रिया-अनुष्ठान पर जोर देते हैं।

अब भिन्न-भिन्न प्रकार की जो परम्परागत बातें हैं, उन बातों पर जोर दिया करते हैं, पर श्री रामकृष्ण उन बातों को काटते भी नहीं थे, बल्कि यह कहते थे कि जो मनुष्य है जिस मत, धर्म, परम्परा में विश्वासी है, उसका वह पालन निष्ठा के साथ करता रहे, पर साथ-ही-साथ अपने मन में इस भाव का दृढ़ पोषण करे कि केवल उनका अपना रास्ता ही ठीक नहीं, बल्कि सभी रास्ते ठीक हैं। इस धारणा को उसके मन में रहना बहुत जरूरी है, इस बात पर वे बारम्बार जोर भी दिया करते थे। यह सत्य के सम्बन्ध में उनके जीवन के माध्यम से प्रचार था। जैसा हमने देखा कि उनका जीवन, उनके श्वास-प्रश्वास से मानो धर्म प्रचारित होता था। ऐसा अद्‌भुत श्री रामकृष्ण का जीवन था। तो यह जीवन हमारे समक्ष आता है। वे ये लीला करके हमारे समक्ष आते हैं और धर्म के ये सत्य हमारे समक्ष उपस्थित करके जाते हैं। ऐसे जो श्री रामकृष्ण हैं, उनके जीवन से हमें यही सीख लेनी होगी – धर्म को अपने जीवन में उतारना होना।

आज संसार कितने प्रकार के विवादों से ग्रस्त है! आज संसार में हम कितनी अशांति देखते हैं? श्री रामकृष्ण के जीवन को केन्द्र बना करके हम अपने जीवन की अशांति को दूर कर सकते हैं। उनके जीवन में यह शक्ति है, वह प्रेरणा देने की शक्ति है, जिसके माध्यम से हम धर्म के केन्द्रीय भाव को अपने जीवन में आत्मसात् कर सकते हैं और अपने-आपको धन्य बना ले सकते हैं। और श्री रामकृष्ण के जीवन में जो एक बड़ी अद्‌भुत बात आयी, वह यह थी कि जब श्री रामकृष्ण धर्म का इस प्रकार चिन्तन कर रहे थे, तो धर्म के चिन्तन में उन्होंने ईश्वर को ऐसा कोई ईश्वर नहीं मामा, जो संसार से बहुत ऊपर बैठा हुआ हो। उस ईश्वर की कल्पना उन्होंने नहीं की। तब उन्होंने क्या किया? उन्होंने उसी ईश्वर को, जिसे हम संसार से बाहर समझते हैं, संसार में लाने का प्रयास किया। संसार के माध्यम से उन्होंने ईश्वर को देखना सिखाया।

उनके जीवन का एक प्रसंग आता है। जैसे एक दिन वे आँखें बन्द करके ध्यान कर रहे थे और तब उन्हें ऐसा लगा कि मैं आँखें बन्द करके ईश्वर का ध्यान कर रहा हूँ तो क्या आँखें खुली रहने से ईश्वर का ध्यान नहीं होता, उन्होंने अपनी आँखें खोल दीं। और आँखें खोल करके उन्होंने ईश्वर को सभी वस्तुओं में देखा, संसार में व्याप्त जिस ईश्वर का दर्शन वे आँखें बन्द करके कर रहे थे। इसीलिए उन्होंने उपदेश दिया था कि वह ईश्वर जैसे आँखें बन्द करने पर दिखायी देता, है, वसे ही आँखें खुली रहने पर दिखायी देता, बल्कि वे यह तो कहा करते थे कि जो ईश्वर आँखों को खुली रखने पर भी दिखायी नहीं देता हो तो उस ईश्वर का भला जीवन में क्या प्रयोजन है। ऐसा अद्‌भुत उनका जीवन है और ऐसा ईश्वरमय जीवन कि उन्होंने संसार को ईश्वर से अलग नहीं किया। वे निर्विकल्प समाधि के आनन्द में नहीं डूबना चाहते थे। जिससे यह संसार छूट जाए; बल्कि वे यह चाहते थे कि वह ईश्वर है, वह निर्विकल्प समाधि का आनन्द इस संसार के माध्यम के व्यक्त हो। और इसलिए जब वे समाधि में जाने लगते तो वे जगन्माता से कहते "माँ! तू मुझे बेहोश मत कर, भक्तों के साथ मुझे बात

करने दे, इनके साथ कुछ बातें करने दे। वे जगत् का कल्याण किस प्रकार चाहते हैं, यह उनका एक निर्देशन है।

उनके जीवन में एक प्रसंग आता है। वे उपदेश देते हुए एक सुन्दर उदाहरण देते हैं। कुछ दोस्त रास्ते से चले जा रहे थे। उन्होंने देखा कि एक बहुत ऊंचा, बड़ा ऊंचा परकोटा है। उनके अन्दर से कुछ आवाजें आ रही हैं। इन दोस्तों को बड़ा विचित्र-सा लगा, कौतूहल भी हुआ कि इस परकोटे के अन्दर कौन है, और किसकी यह आवाज आ रही है। एक दोस्त ऊपर में परकोटे पर चढ़ता है और चढ़ करके जिस समय वह देखता है तो आनन्द से इतना विह्वल हो जाता है कि वह चिल्ला करके उस परकोटे के भीतर कूद पड़ता है। दूसरा दोस्त भी चढ़ा, यह कैसी विचित्र बात हो गयी कि यह ऊपर गया और उसने कुछ बताया नहीं कि परकोटे के अंदर क्या है? वह स्वयं आनन्द से उल्लसित हो करके परकोटे के ऊपर चढ़ करके देखना चाहा कि परकोटे के अंदर का क्या दृश्य है? वह भी चढ़ा और जिस समय उसने भीतर का दृश्य देखा, वह भी आनन्द से विह्वल हो जाता है और वह परकोटे के अन्दर कूद पड़ता है। तब तीसरा मित्र चढ़ा, उसने भी वह आनन्द का दृश्य तो देखा पर उसने अपनी उस भावना को दबा लिया, जो कह रही थी कि तुम भी चलो कूदो, परकोटे के भीतर कूद जाओ, और उस आनन्द का उपभोग करो। वह किसी प्रकार अपने को संयत करता है और चिल्ला-चिल्ला करके लोगों को बुलाता है कि आओ जरा आनन्द तो देखो, कैसा आनन्द यहाँ दिखाई दे रहा है। तो श्री रामकृष्ण इस प्रकार के थे। श्री रामकृष्ण उस तीसरे व्यक्ति के समान हैं जो बुलाते हैं सबको, जो निर्विकल्प समाधि के आनन्द में डूबकर के नहीं रहना चाहते, जो इस संसार को देखते हैं और संसार को देखते हुए दूसरों को जब बुलाते हैं कि आओ यह जो आनन्द है-- जिसका उपभोग मैं कर रहा हूँ उस आनन्द का उपभोग तुम लोग भी करो। वे सबको बाँटना चाहते हैं, यह आनन्द। यह श्री रामकृष्ण की वृत्ति है।

और इसलिए उनके अन्तिम दिनों में जब गले में कैंसर का रोग हो गया, बहुत पीड़ा होती थी। वे बोल नहीं सकते थे, फुस-फुसाकर बातें करते थे। उन दिनों भी चिकित्सक ने मना किया था कि किसी से आप बातें मत करें। तब भी जब कोई जिज्ञासु आता तो उसे बुला करके वे उससे बातें करते ताकि अपने जीवन में जिस ताप से वह त्रस्त है और जिस ताप को छुड़ाने के लिए, अपने को शीतल करने के लिए, अपनी रक्षा करने के लिए वह मेरे पास आया है उससे बातें करके उसके ताप को किसी प्रकार मैं कम करूँ। यह श्री रामकृष्ण का भाव था। उन अंतिम दिनों में कैंसर की पीड़ा से खूब छटपटा रहे थे तो भक्तों के प्रति, साधकों के प्रति उनका यह जो अनुराग था, वह दर्शनीय था। ऐसे हैं श्री रामकृष्ण।

तो विवेकानन्द कहा करते थे कि यह सतयुग आया है और यह उनके जीवन के माध्यम से प्रारम्भ होता है। हम लोग उस सतयुग के लाभ से वंचित न हों, यही इस अवसर पर मैं कामना करता हूँ। उस सतयुग का लाभ हम सबको अपने जीवन में मिले, श्रीरामकृष्ण के जीवन के उद्देश्य को हम समझें, अपने जीवन के उद्देश्य को समझें और उस उद्देश्य को प्राप्त करके धन्य अनुभव करें।

तो इस अवसर पर मैं यही प्रार्थना करता हूँ कि हम सब लोग अपने जीवन में वह धन्यता प्राप्त करके अपने को धन्य करें, कृतार्थ करें और विश्व के लोगों के लिए एक आदर्श स्वरूप अपने को रख करके विश्व को, जिस तनाव से वह गुजर रहा है, उस तनाव से मुक्ति पाने के लिए हम भी सहयोग प्रदान करें।

(रामकृष्ण आश्रम, ग्वालियर में दिनांक ११ नवम्बर १९७९ को दिये गये अंग्रेजी भाषण का हिन्दी रूपान्तर। आश्रम स्मारिका १९८६ से साभार)

श्रीमाँ सारदा देवी के संस्मरण (१)

—स्वामी अपूर्वानन्द
अध्यक्ष, अद्वैत आश्रम, वाराणसी

[श्रीमत् स्वामी अपूर्वानन्दजी महाराज रामकृष्ण संघ के एक वरिष्ठ संन्यासी तथा श्रीरामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी के अध्यक्ष हैं। उनकी आयु अभी लगभग ८७ वर्ष की है। श्रीरामकृष्णदेव के अन्तरंग लीला पार्षद एवं रामकृष्ण मठ-मिशन के द्वितीय महाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी शिवानन्दजी महाराज के वे अन्यतम सेवक रहे। श्रीरामकृष्णदेव के और भी कई पार्षदों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हुआ। श्रीमाँ सारदादेवी से उन्होंने मंत्रदीक्षा प्राप्त की। हिन्दी तथा बंगला भाषाओं में कई ग्रन्थों की उन्होंने रचना की है। प्रस्तुत लेख रामकृष्ण मिशन इन्स्टीट्यूट ऑफ कल्चर कलकत्ता द्वारा प्रकाशित 'शतरूपे सारदा' नामक बंगला ग्रन्थ से साभार गृहीत एवं अनूदित हुआ है। अनुवादक हैं रामकृष्ण मठ, राजकोट में सेवारत स्वामी निखिलेश्वरानन्द।—सं]

सन् १९१८ मेरे जीवन का एक अविस्मरणीय वर्ष रहा। उसी वर्ष मैं श्री माँसारदा देवी के सान्निध्य में आया, वर्तमान युग के श्रेष्ठ पुण्यस्थान बेलुड़ मठ के दर्शन मैंने किये तथा उसी वर्ष श्री रामकृष्णदेव के पाँच पार्षदों—स्वामी ब्रह्मानन्दजी, स्वामी शिवानन्दजी, स्वामी सारदानन्दजी, स्वामी सुबोधानन्दजी तथा स्वामी तुरीयानन्दजी, के दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ।

शारदीया लक्ष्मीपूजा के कुछ दिनों बाद मैं पहली बार बेलुड़ मठ गया तथा आठ दस दिनों तक वहाँ रहा। बेलुड़-मठ दर्शन के पीछे भी एक कहानी है। मैंने एक बार स्वप्न में बेलुड़ मठ तथा महापुरुष महाराज (स्वामी शिवानन्द जी) को देखा था। उस स्वप्न की बात महापुरुष महाराज को पत्र द्वारा बताकर उनसे बेलुड़-मठ दर्शन की अनुमति की याचना की। उन्होंने अनुमति दे दी। पत्र पाकर मैं बेलुड़ मठ के लिए रवाना हुआ। मठ में पहुँचकर देखा—अपने उसी स्वप्न दृष्ट बेलुड़ मठ को।

सीढ़ी चढ़कर दुमंजिले पर स्थित पुराने मन्दिर में प्रणाम करते ही मैं आनन्द विभोर हो गया। कुछ देर बाद नीचे उतरकर एक संन्यासी से महापुरुष महाराज के दर्शन की याचना करने पर वे मुझे महापुरुष महाराज के कमरे में ले गये। मठ-भवन की सीढ़ी से ऊपर चढ़ते ही दिव्य कान्ति तथा प्रशान्त वदन एक वरिष्ठ संन्यासी को देखते ही मेरा मन कह उठा—ये ही हैं मेरे स्वप्न दृष्ट महापुरुष महाराज। सस्नेह उन्होंने मेरी ओर देखा। कृपा तथा करुणा मानो उनकी दृष्टि से झर रही थी। मैं अभिभूत होकर उनके चरणों पर नत मस्तक हुआ। उनसे दीक्षा की याचना करने पर उन्होंने कहा— "मैं तो किसी को दीक्षा नहीं देता। ठाकुर (श्री रामकृष्ण) ही तुम्हारे गुरु हैं, तुम पतित पावन रामकृष्ण नाम का जप करो, उसी से तुम्हारा कल्याण होगा। बाद में यदि दीक्षा की आवश्यकता होगी, तो उसका प्रबन्ध भी वे ही कर देंगे।

दो तीन दिन मठ में रहने के बाद एक दिन सुबह के समय नियमानुसार जब मैं महापुरुष महाराज को प्रणाम करने गया था, तब उन्होंने स्वयं हो श्री श्री माँ सारदा देवी की बात करते हुए कहा—"तुमने तो माँ को देखा नहीं। तुम्हारा यह महान सौभाग्य है कि इस समय श्री माँ बागबाजार में 'उद्‌बोधन' भवन में हैं। उनके दर्शन करने चले जाओ। बलराम मन्दिर में महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) तथा हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द जी) हैं, उनके भी दर्शन करना।" दूसरे दिन सुबह ही जाने का निर्देश उन्होंने मुझे दिया। उन्होंने यह भी कहा— उद्‌बोधन' में शरत महाराज (स्वामी सारदानन्द जी) को तथा बलराम मन्दिर में महाराज एवं हरि महाराज के दर्शन करके उन्हें कहना कि मैंने तुम्हें मठ से भिजवाया है।'

दूसरे दिन सुबह नाव द्वारा बागबाजार पहुँचा। नाव से उतरकर पूछते हुए, 'उद्‌बोधन' माँ के घर पहुँचा। माँ के घर के सामने एक घोड़ा-गाड़ी खड़ी थी। मेरे पहुँचते ही घोड़ा-गाड़ी चली गयी। माँ के घर के भीतर प्रवेश करते ही एक संन्यासी बोले—"श्री माँ अभी-अभी घोड़ा-गाड़ी द्वारा बाहर चली गयीं। वे बलराम मंदिर गयी हैं। इस समय उनके दर्शन नहीं होंगे। शाम को महिला भक्तों के दर्शन का समय है। अतएव कल सुबह ही माँ के दर्शन संभव हैं।

माँ के दर्शन नहीं होंगे, यह सुनकर मन खिन्न हो गया। उसी समय एक स्थूलकाय वरिष्ठ संन्यासी गंगा स्नान करके लौटे। वे भींगा हुआ गमछा पहने हुए थे, उनके कंधे पर भीगी हुई धोती थी तथा हाथ में गंगाजल का पात्र था। प्रणाम करने के लिए अग्रसर होने पर उन्होंने गंभीर स्वर में कहा—"ठहरो, पहले पैर धोने दो।" उसी संन्यासी ने कहा—ये हैं स्वामी सारदानन्द जी। पैर धोकर बरामदे में आते ही मैंने उन्हें प्रणाम कर श्री माँ के दर्शन हेतु प्रार्थना निवेदित की तथा उन्हें यह भी बताया कि पूजनीय महापुरुष महाराज ने मुझे भेजा है। स्वामी सारदानन्दजी ने भी कहा कि उस दिन माँ के दर्शन संभव नहीं हैं। दूसरे दिन सुबह श्रीमाँ के दर्शन हो सकते हैं।

तब 'उद्‌बोधन' में और भी कुछ संन्यासियों को प्रणाम कर पूजनीय राजा महाराज तथा पूजनीय हरि महाराज के दर्शन के लिए बलराम मंदिर की ओर रवाना हो गया। बलराम मंदिर जाकर राजा महाराज के दर्शन प्राप्त हुए। श्री श्री ठाकुर के दर्शन का सौभाग्य तो मुझे प्राप्त नहीं हुआ था, किन्तु उनके मानसपुत्र को स्थूल देह में दर्शन तथा प्रणाम कर पाया, इससे मैंने अपने आप को भाग्यवान समझा। किन्तु हरि महाराज के दर्शन नहीं मिले। उनके सेवक महाराज ने कहा— संध्या के बाद उनके दर्शन होंगे, इस समय नहीं। संध्या के बाद फिर से बलराम मंदिर गया। सेवक महाराज के साथ भेंट हुई। वे मुझे हरि महाराज के कमरे में ले गये। फर्श पर सिर रखकर मैंने उनको (हरि महाराज को) प्रणाम किया तथा बाद में उनका चरण-स्पर्श किया। उन्होंने मुझे पास में एक छोटी बेंच पर बैठने को कहा तथा सस्नेह मुझसे तरह-तरह की बातें करने लगे। श्री माँ के दर्शन नहीं होने से मेरा मन बहुत खराब था। उन्होंने ममता भरे स्वर में कहा—"माँ के दर्शन क्या इतने सहज हैं? उन्होंने तुम्हारे अन्तर की व्याकुलता बढ़ाने के लिए ही आज दर्शन नहीं दिये। बाद में उनके दर्शन मिलेंगे। इसके लिए दुःख करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे मन में उनका अभाव-बोध और भी बढ़ने पर ठीक समय पर वे दर्शन देंगी। खूब रो-रोकर प्रार्थना करो। प्रसन्न होने पर वे अवश्य दर्शन देंगी।" श्री श्री माँ के दर्शन के लिए इतनी तैयारी का प्रयोजन

है, इतनी बातें आवश्यक हैं, इसकी मुझे धारणा नहीं थी। उनकी बातों से मन शान्त हुआ। उन्हें प्रणाम कर अपने निवास स्थान लौट आया।

दूसरे दिन प्रातः श्री माँ के दर्शन के लिए गया, किन्तु दर्शन नहीं मिला। संन्यासियों ने कहा, आज सुबह विशेष कारणवश पुरुष भक्तों को माँ के दर्शन नहीं होंगे। दूसरे दिन सुबह आने के लिए उनलोगों ने मुझे कहा। मन खिन्न हो उठा। बलराम मंदिर पूजनीय महाराज तथा हरि महराज के दर्शन के लिए गया, किन्तु वह भी नहीं हुआ। ऐसा लगा मानो वह दिन सतयुग के समान दीर्घ है। यथासंभव ध्यान, तथा प्रार्थनादि करने का प्रयत्न मैंने किया, किन्तु मन के भीतर एक विराट शून्यता थी—शूल चुभने के समान छटपटाते हुए दिन व्यतीत किया। संध्या के समय मैं फिर से हरि महाराज के पास गया। उन्होंने मुझे कई प्रकार से सान्त्वना प्रदान की। बहुत देर तक उनके समीप बैठकर, उनके स्नेह से आप्लावित होकर अनिच्छा के बावजूद उनसे विदा ग्रहण की। रात में प्राणों की अस्थिरता से नींद नहीं हुई।

मैं एक भक्त के घर ठहरा था। दूसरे दिन तड़के गंगास्नान कर उस भक्त के पूजागृह में ध्यान करने के लिए बैठा। कुछ समय में ही एक अलौकिक घटना घटी। आनन्द तथा विस्मय से बाह्यज्ञान-शून्य होकर मैं दीर्घकाल तक आसन पर बैठा रहा। आसन से उठा, तब साढ़े छः बज चुके थे। ध्यान की बात सोचते-सोचते आशापूर्ण हृदय से श्री श्री माँ के घर की ओर रवाना हुआ।

'उद्‌बोधन' भवन पहुँच कर देखा, कि पन्द्रह-बीस भक्त श्री श्री माँ के दर्शन के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं। पता चला कि माँ के दर्शन होंगे। आनन्द से मैं अधीर हो उठा। साढ़े सात बजे के के बाद एक संन्यासी ने एक बड़ी थाली में दोने में सजाया हुआ प्रसाद लाकर सभी के हाथों-हाथों में देकर कहा—"माँ ने प्रसाद भेजा है, प्रसाद ग्रहण कर प्रतीक्षा कीजिए। माँ के दर्शन के लिए बुलाने पर सभी दर्शन कर पायेंगे।" उन्होंने यह भी कहा कि माँ ने स्वयं अपने हाथों से प्रसाद सजाकर भक्तों के लिए भेजा है। उस प्रसाद को खाते समय बहुत आनन्द हुआ। माँ ने प्रसन्न होकर स्वयं अपने हाथों से प्रसाद भेजा है, इससे बड़ी प्राप्ति और क्या हो सकती है? उस प्रसाद में था माँ का स्पर्श, स्नेह तथा ममता।

भक्तलोग आपस में बातचीत कर रहे थे—सामने की सीढ़ी से चढ़कर जाना पड़ेगा; माँ के दर्शन कर दूसरे रास्ते से नीचे उतरना पड़ेगा; माँ पुरुष भक्तों से बातचीत नहीं करतीं इत्यादि। मैं यह सब नहीं जानता था। माँ पुरुष भक्तों से बातचीत नहीं करतीं, जानकर मन खराब हो गया। मैं तो माँ कहकर पुकारूँगा, क्या वे उत्तर नहीं देंगी! एक शब्द भी नहीं बोलेंगी! इस चिन्ता से मन उद्वेलित हो रहा था। इतने में देखा कि भक्तों के बीच उत्तेजना फैल गयी। ऊपर जाने की सीढ़ी से सभी लोग कतार-बद्ध हो चलने लगे। सीढ़ी तक सभी लोग कतार में खड़े हो गये। मैंने सोचा—"मैं सबके पीछे रहूँगा। सब के अन्त में मैं प्रणाम करूँगा।" बालबुद्धि होने से डर भी लगा-माँ यदि उतने समय में चली जायें और यदि प्रणाम न कर पाऊँ!

किन्तु उस समय आगे जाकर अन्य कुछ करने का कोई उपाय नहीं था। उस कतार में सबसे अंत में चुप चाप प्रार्थनारत होकर खड़ा-खड़ा माँ की बात सोचने लगा। भोर के समय ध्यान का चित्र अन्तर में उज्ज्वल हो उठा।

भक्तगण सीढ़ी से जा रहे थे माँ को प्रणाम करने। मैं भी अनुसरण कर रहा था। सीढ़ी चढ़कर ऊपर पहुँचने पर देखा कि एक कमरे के दरवाजे के सामने एक-एक करके प्रत्येक व्यक्ति फर्श पर

मस्तक रखकर प्रणाम कर रहे हैं और दूसरी ओर से नीचे उतरते जा रहे हैं। मैं आगे बढ़ रहा था तथा मेरे पीछे कोई और नहीं था। कमरे के दरवाजे के सामने प्रणाम के स्थान पर आकर देखा—श्री माँ सिर से पैर तक एक सफेद रेशमी चादर ओढ़कर घूँघट डालकर बैठी हुई हैं– माँ के चरण भी नहीं दीखते थे, पूरे ढके थे। मैं निराश हो गया - प्रतीक्षा करने का समय नहीं था। मैंने भी घुटने टेककर माँ के सामने फर्श पर मस्तक रखकर प्रणाम किया –तीस-चालीस सेकेन्ड या अधिक से अधिक एक मिनट तक मस्तक नीचे रखा था—नेत्र अश्रुपूर्ण थे। मस्तक उठाकर देखा, माँ ने चादर हटा दी है, मुख पर घूँघट भी नहीं है। वे सस्नेह मेरी ओर निहार रही हैं। आनन्द से मैं विभोर हो गया। उनके चरण-स्पर्श करने के लिए हाथ बढ़ाते ही माँ ने सस्मितानन से मेरे चेहरे पर अपना हाथ घुमाकर मेरे आँसुओं को पोंछ दिया तथा मेरी ठुड्डी पकड़कर चुम्बन किया। मधुर स्वर में उन्होंने पूछा –"बेटा, प्रसाद पाया हैं ?" मैंने उनके मुख की ओर ताकते हुए कहा—"हाँ, माँ, पाया है।" बस,ये ही दो बातें हुईं। माँ के स्नेह-स्पर्श तथा मधुर वचन से अन्तःकरण भर गया था। मैंने अवाक होकर माँ को देखा था-भोर में ध्यान के समय इन्हीं के तो दर्शन किये थे। वही पतली लाल किनारेवाली साड़ी पहने मातृमूर्त्ति ने मुझे गोद में लेकर हृदय से लगाकर पूरे शरीर का चुम्बन तथा स्पर्श कर हाथ घुमाकर कितने प्रकार से लाड़ प्यार किया था। सब कुछ स्वप्नवत् लग रहा था। इच्छा हुई कि माँ को पूछूँ, किन्तु पूछा नहीं। माँ को एकबार और प्रणाम कर विदा ग्रहण की। थोड़ा सा चलकर पीछे मुड़कर देखा, माँ तब भी मेरी ओर सस्नेह निहारती हुई बैठी थीं। वे दृष्टि द्वारा मेरा अनुसरण कर रही थीं। इतने वर्षों बाद अब समझा हूँ—मैं कितनी भी दूर क्यों न जाऊँ, उनकी दृष्टि के बाहर जाने का उपाय नहीं है।

नीचे उतरकर सर्वप्रथम मन में विचार आया कि अपने इस सौभाग्य की खबर जाकर पूजनीय हरि महाराज को दूँ। साढ़े आठ बजे का समय था। उनसे भेंट होगी कि नहीं, यह भी अनिश्चित था। इसके अलावा मन में यह भी विचार आया कि मठ से एक दिन के लिए आया था दर्शन कर उसी दिन लौटने की बात थी किन्तु तीन दिन हो गये। अनिश्चितता के कारण मठ में कोई खबर भी नहीं भिजवा सका था। इसीलिए उसी समय मठ लौटने का निश्चय किया।

पूजनीय हरि महाराज से इस स्थूल देह में इसके बाद भेंट नहीं हुई। उन के आशीर्वाद से ही मैंने श्री श्री माँ का प्रथम दर्शन किया था। उन्होंने ही अपने पुण्य स्पर्श द्वारा मेरा शरीर तथा मन शुद्ध कर दिया था। प्रार्थना द्वारा मातृदर्शन की सब बाधाएँ उन्होंने दूर कर दी थीं तथा शक्तिपूर्ण प्रेरणा से मुझे अग्रसर किया था। अपने हृदय की कृतज्ञता उनके समक्ष प्रकट नहीं कर सका, इसका मुझे आज भी पश्चाताप होता है।

मठ पहुँचकर महापुरुष महाराज को सब कुछ बताया। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—"तुम सौभाग्यशाली हो, अन्यथा इस प्रकार का सब संयोग दुर्लभ है। श्री श्री माँ का तुमने दर्शन किया है; उन्होंने तुम्हारे साथ बातचीत की है, तुम्हें आशीर्वाद दिया है, यह क्या साधारण बात है। तुम्हारा मंगल होगा, मैं कहता हूँ बहुत मंगल होगा। ठाकुर ने तुम पर कृपा की है।"

इस बार आठ दस दिनों तक बेलुड़ मठ में निवास कर स्वयं को वहीं मठ में रखकर, मात्र देह को लेकर घर लौट आया।

अगस्त १९१९। रामकृष्ण मिशन द्वारा बांकुड़ा जिले में दुर्भिक्ष पीड़ितों के लिए सेवा-कार्य चल

रहा था। महापुरुष महाराज ने मुझे लिखा—"बाँकुड़ा जिले के ईंदपुर अंचल में हमारे मठ के दो संन्यासियों ने दुर्भिक्ष सेवा-कार्य प्रारम्भ किया है। वहाँ पर एक कार्य-कर्त्ता की आवश्यकता है, अतः तुम पत्र पाते ही मठ चले आओ। हमलोग तुम्हें बाँकुड़ा सेवाकार्य के लिए भेजेंगे।' पत्र पाने के दो-तीन घण्टों के भीतर ही केवल पहने वस्त्र से गृहत्याग कर मैं बेलुड़ मठ के लिए रवाना हो गया तथा तृतीय दिन मठ पहुँचकर महापुरुष महाराज को प्रणाम करते ही उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कहा —"आ गये? वाह, वहुत अच्छा। आज रात में ही बाँकुड़ा जाना होगा।'

इंदपुर जाकर सेवाकार्य में लग गया। श्रीश्रीमाँ का घर भी बाँकुड़ा जिले में था, तथा माँ उन दिनों जयरामबाटी में ही थीं। श्री श्री माँ के दर्शन करने का तथा उनकी कृपा प्राप्त करने का यही सुन्दर सुयोग समझकर महापुरुष महाराज को मन की इच्छा प्रकट कर पत्र दिया कि यदि वे कृपा कर श्री श्री माँ को मेरी दीक्षा के विषय में लिख दें, तभी माँ की कृपा पाना संभव होगा।

मेरा पत्र पाते ही महापुरुष महाराज ने अविलम्ब उत्तर दिया—"श्री श्रीमाँ के श्रीचरणों के दर्शन की अभिलाषा रखते हो, यह उत्तम बात है। तुम वहाँ जाकर कहना 'शिवानन्द स्वामी (तारक महाराज) ने मुझे आपके श्री चरणों के पास भेजा है। बाँकुड़ा दुर्भिक्ष पीड़ितों की सेवा करने के लिए उन्होंने मुझे भेजा था, वहाँ से आपके श्री चरणों के दर्शन करने तथा कृपा प्राप्त करने के लिए आया हूँ।' यह बात कहते ही वह तुम पर कृपा करेंगी। उन्होंने कृपा का द्वार, उन्मुक्त कर रखा है, जो भी जाता है, किसी को विमुख नहीं करतीं। अतः मुझे अलग से पत्र लिखने की आवश्यकता नहीं है। इस पत्र को उनके समक्ष पढ़ना, उसी से हो जायगा।" महापुरुष महाराज का पत्र पाकर अत्यन्त हर्ष हुआ। आशा तथा आनन्द से हृदय परिपूर्ण हो गया। किन्तु, जिस कार्य के लिए आया हूँ, उसकी हानि करके तो नहीं जाया जा सकता है। अतः मातृदर्शन के लिए उचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगा।

उसी पत्र में महापुरुष महाराज ने दो तौलिये भिजवाने के लिए कहा था। स्थानीय बाजार से तौलिये खरीदकर रजिस्ट्री द्वारा उन्हें भिजवा दिये। तौलिये पाकर महापुरुष महाराज ने लिखा —"तुम्हारे भेजे हुए दो तौलिये आज प्राप्त हुए। श्री श्री माँ की कृपा पाना बड़े भाग्य की बात है। तुम जाकर माँ के श्री चरणों में प्रणाम कर बोलना —"माँ, मुझ पर कृपा करो।" उसके बाद वे कृपा कर जो कहें, उसे शिरोधार्य करना। यदि वे कृपाकर तुम्हें मन्त्र प्रदान करें तो समझना कि तुम भाग्यवान हो। वे हम सब की माँ हैं। उनके द्वारा प्रदत्त मन्त्र पाकर तुम्हारा जन्म सार्थक होगा। इससे मुझे भी अत्यन्त प्रसन्नता होगी। वे तुम्हें प्रभु का ही नाम देंगी—सभी को वे वही देती हैं।"

उनका पत्र पाकर श्री श्री माँ के दर्शन के लिए मन बड़ा व्याकुल हो गया। श्री भगवान से कातर-भाव से प्रार्थना करने लगा सुअवसर भी मिल गया। कुछ दिनों की छुट्टी पाकर माँ के दर्शन के लिए रवाना हुआ।

बाँकुड़ा आश्रम तक पैदल तथा वहाँ से ट्रेन द्वारा गड़बेता गया। वहाँ के आश्रम में रात्रि यापन कर (भाद्र के शुरू के एकदिन) सबेरे पुण्यतीर्थ जयराम बाटी की ओर रवाना हुआ। मैं नंगे पाँव था। रास्ते में कीचड़ था, हल्की वर्षा होने से और भी फिसलने वाला हो गया था। सायं ५ बजे जब जयरामबाटी गांव की सीमा में पहुँचा तब छाती की धड़कन बढ़ने लगी। रास्ते के दोनों ओर के मिट्टी के बने छोटे-घरों का अतिक्रमण

कर माँ के घर के दरवाजे पर उपस्थित हुआ। यद्यपि मैंने कोई पत्र नहीं दिया था, किन्तु माँ मानो जान गयी थीं। सेवक महाराज को परिचय देकर माँ के दर्शन के लिए प्रार्थना करते ही वे मुझे घर के भीतर ले गये। श्री श्री माँ उस समय भीतर का दरवाजा पकड़कर खड़ी थीं। प्रणाम कर सिर उठाते ही माँ ने आवेगपूर्ण भाव से कहा "आह! बच्चे का मुख सूख गया है—सारे दिन कुछ खाना नहीं हुआ! उसे कुछ खाने को दो।" मैं जेब से महापुरुष महाराज द्वारा लिखे पत्र को निकालकर पढ़ने जा रहा था तव माँ ने कहा—"पत्र बाद में सुनूँगी। अभी बेटा, हाथ-मुँह धोकर जलपान कर लो।"

मुँह हाथ धोने के बाद सेवक महाराज मुझे पास के कमरे में ले गये। आसन बिछाया हुआ था, थालीभर मुरमुरा था तथा थाल की खीर थी। मैंने माथा नीचे करके माँ की बात सोचते-सोचते सब खा लिया। आह! वह कितना अमृतमय था! मुरमुरा तथा खीर तो जीवन में कितनी बार खाया है, किन्तु इतना स्वादिष्ट तो कभी नहीं लगा!

जयराम वाटी में माँ को देखा ठीक माँ के समान ही- मलिन वस्त्र पहने खड़ी थीं, मेरे आगमन की प्रतीक्षा में, कितने स्नेह तथा करुणा से परिपूर्ण मूर्ति थीं वे! लगभग दस माह पूर्व बागबाजार में 'माँ के भवन' में माँ का जब दर्शन किया था तब वे उतने निकट की प्रतीत नहीं हुई थीं।

कुछ ही देर बाद फिर माँ के पास गया। वे तब उस मिट्टी के घर के बरामदे में पैर फैलाकर बैठी थीं तथा सब्जी काट रही थीं। माँ को प्रणाम कर पास में बैठकर महापुरुष महाराज का पत्र पढ़कर सुनाया। उन्होंने 'तारक' (महापुरुष महाराज) की खबर पूछी, सस्नेह दुर्भिक्ष सेवाकार्य की सब खबर ली बाद में दीक्षा के सम्बन्ध में उन्होंने कहा—"बेटा, कल ही तो शुभ दिन है (शायद जन्माष्टमी थी); कल ही तुम्हें मन्त्र दीक्षा दूँगी। सुबह कुछ मत खाना, स्नान कर के बाद प्रतीक्षा करना। मैं समयानुसार तुम्हें बुला लूँगी।" उसके बाद पास के कमरे में (उनके पूजागृह में) प्रणाम करने को कहा।

मैं श्री माँ के लिए दवा ले गया था। - बाँकुड़ा के डाक्टर स्वामीजी बैकुण्ठ महाराज ने श्री श्री माँ के 'आमबात' के लिए मेरे हाथों होम्योपैथिक दवा भेजी थी। इसे माँ को को देते ही उन्होंने करुणस्वर में कहा—"बैकुण्ठ ने दवा भेजी है? दो बेटा, दो। बैकुण्ठ की दवाई से रोग दूर हो जाता है। देखो—पूरी देह में क्या हुआ है—आमवात की यन्त्रणा से तो मर गयी।" यह कहते कहते देह पर से साड़ी हटाकर छाती तथा पीठ में आमवात दिखाने लगीं। माँ का कष्ट देख-आँखों में आसूँ आ गये।

माँ ने दवा लेकर पास में रख दी तथा आन्तरिकता पूर्वक तथा घनिष्ठभाव से बाँकुड़ा के बैकुण्ठ महाराज इत्यादि के बारे में समाचार पूछने लगी। और भी कितनी बातें हुईं।

क्रमशः संध्या उतर आयी। कमरों में प्रदीप जलाये गये। माँ के पूजागृह में भी प्रदीप, धूप, अगरबत्ती इत्यादि दी गयी। मैं बाहर के कमरे में चला गया।

(अगले अंक में समाप्य)

"सांसारिक भोग-उपभोग नश्वर तथा इनके द्वारा सुख-प्राप्ति की आशा दुराशा मात्र है।"

—भगवान महावीर

विवेकानन्द का सपना और हम

स्वामी आत्मानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर

स्वामी विवेकानन्द आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक थे। भारतवासियों की शताब्दियों से चली आ रही घोर निद्रा को तोड़ने और उनकी सुप्त राष्ट्रीय चेतना को जगाने का उन्होंने अथक प्रयास किया था। पर, जैसा कि फ्रेंच मनीषी रोमाँ लिखते हैं, "मिथ्या स्वप्न-वादिता से ग्रस्त, पूर्वाग्रह से बंधे और स्वल्प प्रयत्न में हो निस्तेज हो जानेवाले जनसमाज का संस्कार क्षण में बदल देना सम्भव नहीं है। किन्तु स्वामीजी के निर्मम कशाघात से भारत ने सोते में पहली बार करवट ली और पहली बार उसने स्वप्न में अपनी प्रगति का शंखनाद सुना। उसे अपने ब्रह्म का बोध हुआ। भारत ने यह स्वप्न कभी विस्मृत नहीं किया। उसी से तन्द्रालस विशाल भारत का जागरण आरम्भ हुआ। विवेकानन्द के निधन के तीन वर्ष पश्चात् तिलक और गाँधी के महान् आन्दोलन के श्रीगणेश के रूप में जो बंग-विद्रोह आगत पीढ़ी के सामने हुआ, और मद्रास में आज तक जो संगठित जन-आन्दोलन हुए, वे सब स्वामीजी द्वारा दिये गये 'मद्रास के सन्देश' में निहित 'लाजारस आगे बढ़ो' की गुरु गम्भीर पुकार के कारण हुए, जिसने बहुतों को जगाया है।"

विवेकानन्द ने हमारे देश के लिए एक सपना देखा—एक ऐसे भारत का सपना देखा, जिसमें धर्म, जाति या भाषा के आधार पर मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं किया जा रहा है, जहाँ धर्म और पौरोहित्य का अत्याचार नहीं है, जहाँ लोगों को अपने विकास के लिए समान अवसर प्राप्त हो रहे हैं। उन्होंने अपने इस सपने को वाणी का रूप देते हुए कहा, 'समाज के सभी व्यक्तियों को धन, विद्या और ज्ञान का उपार्जन करने के लिए एक समान अवसर मिलना चाहिए।······हर एक के विषय में स्वतंत्रता अर्थात् मुक्ति की ओर प्रगति ही मनुष्य के लिए उच्चतम लाभ है।·········जो सामाजिक नियम इस स्वतंत्रता के विकास के मार्ग में बाधक हैं, वे हानिकारक हैं और उनको नष्ट करने का उपाय शीघ्रता से करना चाहिए। जिन संस्थाओं के द्वारा मनुष्य स्वतंत्रता के मार्ग में अग्रसर होते हैं, उन्हें प्रोत्साहित करना चाहिए।'

विवेकानन्द हमें स्मरण दिलाते हैं कि "राष्ट्र झोंपड़ियों में बसता है।" इसलिए वे उच्च वर्णवालों को, जिन्होंने अपने लिए अधिकतम सुविधाएं सुरक्षित रखीं तथा निम्न वर्ण के लोगों का सतत् शोषण किया, चेतावनी देते हुए कहते हैं—'भारतवर्ष के कृषक, चर्मकार, मेहतर तथा ऐसी ही अन्य निम्न जातिवालों में कार्य करने की शक्ति एवं आत्मविश्वास तुम्हारी अपेक्षा अधिक है। वे युगों से चुपचाप काम करते आये हैं और वे ही देश की सम्पूर्ण सम्पत्ति, बिना चूं तक किये, कमाते आये हैं।····इस सहनशील जनता का तुमने इतने दिनों तक दमन किया है, अब उसके प्रतिकार का समय आ गया है।······यदि मजदूर लोग काम करना बन्द कर दें तो तुम्हें अन्नवस्त्र मिलना भी बन्द हो जाय। और तुम उनको

नीच जाति के मनुष्य मानते हो और अपनी संस्कृति को शेखी बघारते हो। आजीविका के संग्राम में व्यस्त रहने के कारण उन्हें अपने में ज्ञान की जागृति का अवसर नहीं मिला। वे इतने दिनों तक मानव-बुद्धि द्वारा चलने वाले यंत्र के समान सतत काम करते रहे हैं और चतुर शिक्षित समुदाय ने उनके परिश्रम के फल का सार अंश ले लिया है। ····पर अब जमाना बदल गया है। ····अब उच्च जातिवाले नीच जातिवालों को और अधिक समय तक नहीं दबा सकते, चाहे वे इसके लिए कितनी ही कोशिश क्यों न करें। उच्चतर जातियों का कल्याण अब इसी में है कि वे निम्न जातियों को उनके यथोचित अधिकार प्राप्त करने में सहायता दें।''

विवेकानन्द यह मानते हैं कि प्रकृति में असमानता है, तथापि वे सबके लिए समान अवसर के पक्षपाती हैं। यदि किसी को अधिक और किसी को कम अवसर देना ही है, तो वे कहते हैं कि निर्बलों को सबल से अधिक अवसर देना उचित है। दूसरे शब्दों में ब्राह्मण को शिक्षा की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी चाण्डाल को। यदि ब्राह्मण के लड़के को एक शिक्षक चाहिए, तो चाण्डाल के लड़के को दस, क्योंकि स्वामीजी का तर्क यह है कि अधिकतर सहायता उसे मिलनी चाहिए, जिसे प्रकृति ने जन्म से कुशाग्र बुद्धि नहीं दी है।

विवेकानन्द ने अपने सपने में देखा कि भारत में कोई 'अछूत' नहीं होगा। वे छुआछूत को भारत का सबसे बड़ा कलंक मानते थे। एक स्थान पर उन्होंने उसे 'सामाजिक कोढ़' की संज्ञा दी है, तो दूसरे स्थान पर उसे 'मानसिक रोग' कहा। उन्हें आश्चर्य होता था कि 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का पाठ पढ़ानेवाले देश में अस्पृश्यता की भावना कहाँ से पैदा हो गयी। छुआछूत की पैरवी करनेवाले एक व्यक्ति पर वे उबल पड़े—"क्या तुम समझते हो, हमारा धर्म 'धर्म' कहलाने लायक है? हमारा धर्म तो केवल 'छुओ मत' में है—मुझे मत छुओ,' 'मुझे मत छुओ'। हा भगवन्! जिस देश के बड़े-बड़े नेता गत् दो हजार वर्षों से केवल यही विवाद करते आये हैं कि भोजन दाहिने हाथ से किया जाय या बाँयें हाथ से, पानी दाहिनी ओर से उठाकर पीएँ या बायीं ओर से ······यदि ऐसे देश का विनाश न हो, तो फिर किसका हो? जिस देश में लाखों मनुष्य महुए के फूल से पेट भरते हैं, जहाँ दस-बीस लाख साधु और दस-एक करोड़ ब्राह्मण इन गरीबों का रक्त चूसते हैं, पर उनके सुधार का रत्ती भर भी प्रयास नहीं करते वह कोई देश है या नरक? वह धर्म है या शैतान का नग्न नृत्य?''

विवेकानन्द के ऐसे ही अग्निदीप्त विचारों और कार्यों से प्रभावित हो डा० भीमराव अम्बेदकर ने पण्डित जवाहर लाल नेहरू के निजी सचिव एन० ओ० मथाई से कहा था, "हाल की शताब्दियों में भारत ने जिस महानतम् पुरुष को पैदा किया, वह गांधी नहीं, स्वामी विवेकानन्द थे।" (रेमिनिसेंसेज ऑफ दि नेहरू एज; पृष्ठ २५१)

इस असमानता और जाति-भेद के विष को दूर कर अपने सपने को साकार करने के लिए स्वामी विवेकानन्द ने हमारा मुँह जोहा था। वे चाहते थे कि हम जैसे 'लाखों स्त्री-पुरुष पवित्रता के जोश से उद्दीप्त होकर, ईश्वर के प्रति अटल विश्वास से शक्तिमान् बनकर तथा गरीबों, पतितों एवं पददलितों के प्रति सहानुभूति से सिंह के समान साहसी बनकर इस सम्पूर्ण भारत देश में सर्वत्र उद्धार के सन्देश का, समानता के सन्देश का प्रचार करते हुए विचरण करेंगे।" उन्होंने अपने उस सपने में देखा था कि भारत के उच्च वर्गवाले अपने संचित ज्ञान का भण्डार आचाण्डाल सबके लिए खोल दे रहे हैं और इस प्रकार

शताब्दियों से कुचले गये जनसमुदाय को ऊपर उठने का समान अवसर प्रदान कर रहे हैं। उन्होंने उच्च वर्ण के कहलाने वाले तथा अपने को उच्च वर्ण के माननेवाले लोगों के लिए कर्त्तव्य का विधान करते हुए कहा था, "वर्त्तमान समय में तुम्हारा कर्त्तव्य है कि तुम एक गाँव से दूसरे गाँव को जाओ और लोगों को समझाओ कि अब और अधिक समय तक आलस्यपूर्वक केवल बैठे रहने से काम नहीं चलेगा। उन्हें उनकी यथार्थ स्थिति का परिचय कराओ और कहो, 'ऐ भाइयों, सब लोग उठो। जागो! अब और कितनी देर सोते रहोगे। ···· अब तक ब्राह्मणों ने धर्म पर एकाधिपत्य कर रखा है, पर जब वे काल की प्रबल तरंग के विरुद्ध अपना एकाधिपत्य नहीं रख सकते तब चलो और ऐसे प्रयत्न करो कि देश भर में प्रत्येक को वह धर्म प्राप्त हो जाय।

उनके मन में यह बैठा दो कि ब्राह्मणों के समान उनका भी धर्म पर वही अधिकार है। सभी को, चाण्डाल तक को भी उन्हीं जाज्वल्यमान मंत्रों का उपदेश करो। उन्हें सरल शब्दों में जीवन के लिये आवश्यक विषयों तथा वाणिज्य-व्यापार और कृषि आदि की भी शिक्षा दो। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते, तो धिक्कार है तुम्हारी शिक्षा और संस्कृति को, धिक्कार है तुम्हारे वेदों और वेदान्त के अध्ययन को!" · ···

विवेकानन्द ने उच्च वर्ण के लोगों द्वारा किये गये सामाजिक अत्याचार और उनकी अकर्मण्यता पर प्रहार करते हुए तथा अपने उस सपने में देखे हुए भारत को प्रकट करते हुए कहा था, 'तुम अपने को शून्य में लीन करके अदृश्य हो जाओ और अपने स्थान में नव भारत' का उदय होने दो। उनका उदय हल चलानेवाले किसानों की कुटिया से, मछुए, मोचियों और मेहतरों की झोंपड़ियों से हो। बनिये की दूकान से, रोटी बेंचने वाले की भट्टी के पास से वह प्रकट हो। कारखानों हाटों, बाजारों से वह निकले वह 'नव भारत, अमराइयों और जंगलो से, पहाड़ों और पर्वतों से प्रकट हो। ये साधारण लोग सहस्त्रों वर्ष से अत्याचार सहते आये हैं—बिना कुछ कुड़बुड़ाये उन्होंने यह सब सहा है और परिणाम में उन्होंने आश्चर्यकारक धैर्य—शक्ति प्राप्त कर ली है। वे सतत विपत्ति सहते रहे हैं, जिससे उन्हें अविकल जीवन-शक्ति प्राप्त हो गयी है। मुट्ठी भर अन्न से पेट भरकर वे संसार को कंपा सकते हैं; उनको तुम केवल आधी रोटी दे दो और देखो कि सारे संसार का विस्तार उनकी शक्ति के समावेश के लिए पर्याप्त न होगा। उनमें 'रक्तबीज' की अक्षय जीवन-शक्ति भरी है। इसके अतिरिक्त, उनमें पवित्र और नीतियुक्त जीवन से आनेवाला वह आश्चर्यजनक बल है; जो संसार में अन्यत्र नहीं मिलता। ऐसी शक्ति, ऐसा सन्तोष, ऐसा प्रेम और चुपचाप सतत कार्य करने की ऐसी शक्ति और कार्य के समय इस प्रकार सिंहबल प्रकट करना—यह सब तुम्हें अन्यत्र कहाँ मिलेगा? भूतकाल के कंकाल! देखो, तुम्हारे सामने तुम्हारे उत्तराधिकारी खड़े हैं—भावी भारतवर्ष खड़ा है। अपने खजाने की उन पिटारियों को ·······उनके बीच जितनी जल्दी हो सके, फेंक दो और तुम हवा में मिल जाओ, फिर कभी दिखाई न दो - केवल अपने कानों को खोल रखो। अपने अदृश्य होते ही तत्काल तुम पुनर्जात भारतवर्ष का वह प्रथम उद्घोष सुनोगे, जिसकी करोड़ों गर्जनाओं से सारे विश्व में यही पुकार गूंजती रहेगी—'वाहे गुरु की फतह!"

विवेकानन्द की हमसे यही अपेक्षा है।

●

एकान्तवास एवं निर्जन में साधना

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

भगवान् में मन कैसे लगे? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीरामकृष्ण विभिन्न उपायों के साथ-साथ निर्जन में साधना तथा एकान्तवास की सलाह अवश्य दिया करते थे। वे कहते थे कि अगर पानी में दूध मिलाया जाये तो मिलकर एक हो जायेगा। लेकिन यदि उसी दूध को पहले निर्जन में बिना हिलायेडुलाये दही बनाकर बाद में मथकर मक्खन निकाला जाये, तो वह मक्खन पानी पर तैरता है। जब कोई पूछता कि क्या संसार में रहकर भगवान लाभ सम्भव है तो वे कहते, अवश्य संभव है, लेकिन पहले कुछ दिन निर्जन में रहकर साधना कर लेनी चाहिए। जो लोग राजा जनक को अपना जीवनादर्श बताते, उन्हें वे कहते थे कि जनक ने भी पहले निर्जन में सिर नीचे, पैर ऊपर करके बहुत साधना की थी, उसके बाद वे निर्लिप्त होकर संसार में रह सके थे। सांसारिक कर्मों में लिप्त गृहस्थों के लिए लम्बे समय के लिए निर्जन वास संभव नहीं होता, यह वे समझते थे। अतः वे कहते थे कि यदि एक दिन हो सके तो भी अच्छा है, यदि तीन दिन, सात दिन, जितने दिन भी हो सके समय निकाल कर बीच-बीच में निर्जन में जाकर भगवान को पुकारना चाहिए। घर के पास ही एक ऐसा कोई स्थान चुन लेना चाहिए जहाँ पर बीच बीच में जाया जा सके।

वस्तुतः सभी धर्मशास्त्रों ने एकान्तवास को महत्व दिया है। गीता के तेरहवें अध्याय में "विविक्त देश सेवित्वं" तथा "अरतिजन संसदि", अर्थात एकान्त वास तथा जन समाज से पृथक् रहना, इन दो को ज्ञानसाधनों में गिनाया गया है तथा श्रेष्ठ योगी को "विविक्त सेवी" कहकर संबोधित किया गया है। यही बात ईसाई, सूफी तथा अन्य सम्प्रदायों की शिक्षा में भी पायी जाती है। समग्र संत साहित्य में बिरले ही ऐसा कोई सन्त होगा, जिसने जीवन में कभी न कभी एकान्त में साधना न की हो। जो सन्त, महात्मा या साधु संन्यासी जन समाज में कार्यरत अथवा धर्म प्रचार करते दिखाई देते हैं, वे या तो चित्तशुद्धि के लिए कर्म कर रहे साधक होते हैं, अथवा भगवत् प्रेरणा से लोक कल्याणार्थ सेवारत सिद्ध-महापुरुष। सत्य तो यह है कि एकान्तवास साधना का एक अनिवार्य अंग है। अगर यह कहा जाये, कि एकान्त वास के बिना साधना संभव ही नहीं, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अगर यह अतिशयोक्ति भी हो, तो भी साधक के मन में इसके महत्व को दृढ़ता से बिठाने के लिए इस कथन को सत्य मान लेना ही श्रेयस्कर है।

एकान्त वास क्यों महत्वपूर्ण है? मनोनिग्रह साधना के लिए आवश्यक है। भगवान में मन लगाने के लिए पहले उसकी चंचलता को शान्त करना होगा और मन चंचल होता है दो कारणों से। इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त बाह्य संवेदनों के कारण तथा चित्त में संचित पूर्व संस्कारों के उदित होने के कारण। अगर बाहर से आ रहे संवेदनों को न रोका जाय तो वे चित्त को विक्षिप्त तो करेंगे ही, वासनाओं को पैदाकर नये भोग के

संस्कार भी पैदा करेंगे। अतः यह आवश्यक है कि सर्व प्रथम मन को एकान्त में, ऐसे परिवेश में रखा जाये जहाँ बाह्य संस्पर्श अत्यन्त कम हो। ऐसे में केवल पूर्व संस्कारों से उत्पन्न होने वाली चंचलता की ही समस्या होगी और यदि संस्कार शुभ हों तो मन आसानी से शान्त हो जाता है। ध्यान के लिए एकान्त एक आवश्यक शर्त तो है ही। श्रीरामकृष्ण कहते हैं, ध्यान करो वन में, मन में, कोने में, वन और कोना दोनों एकान्त के ही द्योतक हैं। लेकिन ध्यान के अतिरिक्त भी निर्जन स्थान में कुछ दिनों के लिए निवास साधना के लिए आवश्यक है।

आसक्ति त्याग

त्याग एवं वैराग्य के बिना आध्यात्मिक जीवन संभव नहीं है। इसीलिए बहुत से साधक विधिवत संन्यास लेकर संसार, विषय कर्म एवं समग्र वासनाओं को त्यागकर निर्जन में ऐकान्तिक भगवतचिन्तन के लिए जीवन यापन करने चले जाते हैं। जो लोग ऐसा नहीं कर पाते उनके लिए मन से त्याग, अर्थात् संसार की वस्तुओं, कर्म एवं विषयों से आसक्ति का त्याग आवश्यक है। इसमें एकान्तवास अत्यन्त सहायक होता है। जितने दिन हम एकान्तवास करते हैं, उतने दिन अभ्यस्त कर्मों एवं विषय भोगों का भी किसी न किसी मात्रा में त्याग करना पड़ता है। एकान्त में न तो समाचार पत्र हैं, न ट्रान्जिस्टर, न संसार की खबर देने वाला कोई व्यक्ति। कर्म भी यदि करते हैं, तो वे कर्म नहीं जिनके हम अभ्यस्त हैं। यानी संसार से कुछ दिनों पुरी तरह कटकर रहते हैं। फिर उन लोगों से भी दूर, जो हमपर आश्रित थे। और हम भी उन लोगों से दूर, जिनपर हम शारीरिक अथवा मानसिक दृष्टि से आश्रित थे। पाँच सात दिन इस तरह के नये परिवेश में रहने पर हम पायेंगे कि हम अनभ्यस्त जीवन जीने में सफल हुए हैं और संसार भी हमारे बिना चलता ही रहा है रुका नहीं है। इस तरह अहंता-ममता का भाव कम होता है। जो काम, अहंता ममता त्यागने का काम, हम केवल मानसिक स्तर पर ही करते थे उसे व्यावहारिक, बाह्य स्तर पर भी करने का अवसर मिलता है। इस के साथ अगर श्रीरामकृष्ण के उपदेशानुसार ऐसी प्रार्थना की जाये कि 'प्रभु ! मेरा संसार में तुम्हारे सिवा और कोई नहीं है,' तो और भी अच्छा है।

मन के स्वरूप का अध्ययन

एकान्त वास का एक दूसरा महत्वपूर्ण लाभ यह होता है कि हम अपने मन का निरीक्षण करने का अवसर पाते हैं। कोलाहलमय, सतत-व्यस्त जीवन में अपने मन का अध्ययन करना संभव नहीं होता। हमारे अचेतन मन में ऐसी अनेक इच्छाएँ, वासनाएँ, कल्पनाएँ छिपी रहती हैं, जो सतत व्यस्तत के कारण चंचल मन पर आ नहीं पातीं। सामाजिक परिवेश कुछ वृत्ति विशेष को ही व्यक्त होने का अवसर प्रदान करता है। सामाजिक विधि निषेध हमें शुभ में प्रवृत्त होने को बाध्य करते हैं। ऐसी स्थिति में हम अपने आपको शुभ, सज्जन, यही नहीं, सन्त समझने का धोखा भी खा जाते हैं। निर्जन में, जब समाज की दृष्टि हम पर नहीं है, न ही स्वभावगत कर्मों में मन प्रवृत्त हो पाता है, तब अचेतन मन को व्यक्त होने का अवसर मिलता है—और असंख्य संबद्ध असंबद्ध, शुभ-अशुभ, नये, पुराने विचार चेतन मन पर उभर आते हैं। सजग साधक इन सब का निष्पक्ष द्रष्टा के रूप में निरीक्षण कर अपनी यथार्थ आध्यात्मिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

लेकिन यह स्थिति प्रारंभिक साधक अथवा दुर्बल मस्तिष्क वाले के लिए खतरनाक भी सिद्ध

हो सकती है। अचेतन मन से अचानक उठने वाले अशुभ विचारों को नियन्त्रित करने में असमर्थ साधक अधोगामी हो सकता है। अथवा परस्पर विरोधी विचारों के तनाव से उसका मस्तिष्क विक्षिप्त हो सकता है। यही कारण है कि प्रारंभिक साधक को एकान्तवास का सुझाव नहीं दिया जाता। इसके बदले शान्त, संसार से अलग किसी आश्रम में सन्तों के साथ वास ऐसे लोगों के लिए अधिक लाभप्रद होता है। एक और खतरा है। गतिविधि कम हो जाने पर साधक तमोगुण का शिकार हो सकता है। एकान्त में ध्यान के बदले वह सोकर ही अपना समय गँवा दे सकता है। वस्तुतः सत्वगुणी व्यक्ति ही एकान्त वास का पूरा पूरा लाभ उठा सकता है।

भगवच्चिन्तन

एकान्तवास का मुख्य उद्देश्य है भगवच्चिन्तन, शुभ आध्यात्मिक चिन्तन के द्वारा मन को जितना हो सके रंगना, तथा भगवच्चिन्तन का ऐसा अभ्यास कर लेना कि व्यस्तता एवं कोलाहल के बीच भी उसे बनाए रक्खा जा सके। प्रभु तो सदा ही हमारे भीतर विराजमान हैं। कोलाहल के बीच हम उनकी क्षीण पुकार नहीं सुन पाते। बाह्य कोलाहल एव स्वयं की व्यग्रता और व्यस्तता के समाप्त होने पर अनायास ही प्रभु की पुकार, आन्तरिक आह्वान, सुनाई देगा। अतः अन्तर्मुखी होने के लिए शान्त वातावरण में रहना परमावश्यक है। हम प्रभु के इस आह्वान को सुनकर कितने समय तक उनका सान्निध्य कर पाते हैं, यह तो हमारे पूर्व अभ्यास, एवं साधना की लगन पर निर्भर करता है। (अगले अंक में समाप्य)

सद्य प्रकाशित नवीन प्रकाशित

स्वामी अभेदानन्द प्रणीत

मृत्यु के पार

मृत्यु होने पर मनुष्य कहाँ जाता है? किस अवस्था में रहता है? आत्मा का अस्तित्व है या नहीं परलोक में जीव का अवस्थान किस किस प्रकार रहता है? यह सभी जिज्ञासा आदिम युग से ही मानव मन को आन्दोलित करती रही है। इन सभी की मीमांसा स्वामी अभेदानन्द महाराज ने अपने ग्रन्थ "मृत्यु के पार" में अपनी अभिज्ञता के आधार पर की है। इहलोक के निगूढ़ रहस्यों का परिचय देते हुए उपर्युक्त प्रश्नों का प्रामाणिक उत्तर इस ग्रन्थ में उन्होंने दिया है। मानव एवं प्राणीमात्र की आत्मा का विनाश नहीं है, किन्तु जीव भाव का क्रमविकास होता है एवं मृत्यु क्रम विकास की ही प्रतिछवि है। मनुष्य जन्म-मृत्यु के मध्य विचरण करते हुए ही परम रहस्यमय निज आत्मसत्ता की उपलब्धि करता है।

डिमाई साईज, पृष्ठ संख्या १६८ : मूल्य—बीस रुपया।

प्रकाशक :

श्रीरामकृष्ण वेदान्त मठ

१६-बी, राजाराजकृष्ण स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००६

स्वामी विवेकानन्द : मनीषियों की दृष्टि में

अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द

क्रिस्टोफर ईशरवुड

भारतीय निर्धनता तथा ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन का अत्याचार देखकर विवेकानन्द के हृदय में महान् करुणा का संचार हुआ था और उन्होंने एक क्रान्तिकारी विचार सामने रखा। क्रान्ति के इस भाव ने गांधीजी को अत्यधिक प्रभावित किया और आज तक भारतीय राजनीतिक विचारधारा को प्रभावित कर रहा है। इस दृष्टि से देखा जाय तो विवेकानन्द भारतीय इतिहास की एक महान् हस्ती हैं और भारत में आज तक पैदा होने वाले महानतम ऐतिहासिक व्यक्तियों में अन्यतम हैं। यहाँ पर यह ध्यान रखना उचित होगा कि अन्य महान् नेताओं की क्रान्ति और राष्ट्रवादी भावनाएं अपने आप में चाहे जितनी भी प्रशंसनीय और उत्तम रही हों, पर विवेकानन्द की क्रान्ति और राष्ट्रवाद उन्हीं की श्रेणी का नहीं था। विवेकानन्द उन सब की अपेक्षा बहुत महान् थे। उनके भावों की विविधता देखकर हम हतप्रभ रह जाते हैं। पाश्चात्य लोगों को स्वामीजी ने, एशिया के कुछ भाग तथा अन्य अविकसित अंचलों का शोषण करने वाले मात्र अत्याचारियों के रूप में ही नहीं, वरन भावी सहयोगियों के रूप में भी देखा था, जिनके पास देने को भी बहुत कुछ था। फिर इसके साथ ही उन्होंने बिना किसी दिखावटी नम्रता के साथ पश्चिम का सामना करते हुए कहा, "हमारे पास भी देने को उतना ही, बल्कि उससे कुछ अधिक ही है। हम आपको अपनी वह महान् आध्यात्मिक परम्परा प्रदान करेंगे जो आज भी श्रीरामकृष्ण के समान व्यक्तित्व पैदा करने में सक्षम है। आप हमें चिकित्सा, सेवा, यथासमय चलनेवाली रेलगाड़ियाँ, स्वास्थ्य-विज्ञान, सिचाई व्यवस्था, विद्युत-आलोक दे सकते हैं। ये सब अत्यन्त महत्व की हैं, हम इन्हें चाहते हैं और हम आपके कुछ गुणों के अतीव प्रशंसक हैं।"

स्वामीजी के सर्वाधिक आकर्षक गुणों में एक यह भी है कि वे भिन्न-भिन्न प्रकार के लोगों से बातें करते समय भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों का आश्रय लेते हैं; एक क्षण तो वे अपनी ज्वालामुखी वाणी में ब्रिटिश लोगों को खरी खोटी सुनाते हैं और दूसरे क्षण भारतवासियों की तरफ मुड़कर कहते हैं, "तुम एक पिन तक तो बना नहीं सकते और चले हो अंग्रेजों की निन्दा करने !" कभी वे अमेरिका की भयावह भौतिकता के बारे में बोलते और कभी कहते वहाँ के समान महान् महिलाएँ दुनिया भर में कहीं नहीं हैं एवं भारत में नारियों के प्रति व्यवहार पूर्णतया निन्दनीय हैं। इसप्रकार वे हर तरह का सामंजस्य स्थापित कर रहे थे। विभिन्न देशों में भली और रचनात्मक शक्तियों को क्रियाशील देखकर वे कह उठते, "हम क्यों न विनिमय करें ?" अतः विवेकानन्द की क्रान्ति हर व्यक्ति के लिए एक क्रान्ति थी, एक ऐसी क्रान्ति जो अंग्रेजों के लिए भी उतनी ही उपयोगी होने वाली थी जितनी की भारतवासियों के लिए। फिर स्वामीजी का राष्ट्रवाद—भारतको अपनी शक्तियोंको पहचानने का आह्वान—यह कोई संकीर्ण राष्ट्रवाद नहीं था, अपितु एक तरह का महा-राष्ट्रवाद था, एक तरह का उदात्त अन्तर्राष्ट्रवाद था। आप सबको स्वामीजी की वह प्रिय कहानी ज्ञात होगी,

जिसमें भेड़ो के झुण्ड में पलकर बड़ा हुआ एक सिंह है। फिर जंगल में से एक और सिंह आता है। भेड़ें सब भाग जाती हैं। वह छोटा सिंह भी अपने को भेड़ समझकर भागता है। फिर उसका पीछा करता हुआ वन का सिंह उसे पकड़ लेता है और एक तालाब के किनारे ले जाकर उससे कहता है, देख अपने आपको, तू भी एक सिंह ही है।" विवेकानन्द भी भारतीय जनता के साथ यही कर रहे थे। अपने एक पत्र में वे लिखते हैं—सभी पाश्चात्य देशों के बारे में एक अद्भुत बात यह है कि वे अपने आपको राष्ट्रों के रूप में जानते हैं। उन्होंने बताया कि ईर्ष्या भारत का एक बड़ा अभिशाप है। भारतवासी एक दूसरे के साथ सहयोग करना नहीं जानते। वे पाश्चात्य राष्ट्रों की आपसी सहयोगिता देखकर सीखते क्यों नहीं ? मैं ये सब उद्धरण इसलिए दे रहा हूँ कि स्वामीजी के इन समस्त दृष्टिकोणों पर विचार करने से ही हमें उनकी विराट् सद्भावना और एकात्मता का बोध होता है। वस्तुतः वे हर व्यक्ति के पक्षधर थे—पश्चिम के पक्षधर थे तथा भारत के भी पक्षधर थे, और वे भविष्य में दूर दूर तक देख पाते थे। उनकी राजनीतिक भविष्यवाणियाँ अत्यन्त रोचक हैं। उन्होंने बारम्बार कहा कि चीन ही उस महान् शक्ति के रूप में उभरेगा जिसका कि अन्ततगोत्वा हमें सामना करना पड़ेगा। १९०० ई० में युरोप में अन्तिम बार यात्रा करते समय उन्होंने कहा था कि मुझे सर्वत्र युद्ध को गंध आ रही है और यह बात उस काल के श्रेष्ठतम राजनीति विशारदों के अनुमानों से भी कही अधिक सटीक थी।

माइकेल टैलबोट

प्राच्य जगत् के प्राचीन दर्शनों और पश्चिम के उदीयमान दर्शनों में अनेक समानान्तर धारणाएं हैं। कुछ धारणाओं में तो इतनी समानता है कि कभी-कभी तो यह निश्चित कर पाना कठिन हो जाता है कि ये एक दार्शनिक के वचन हैं अथवा एक भौतिकविज्ञानी की उक्तियाँ। एसालन इन्सटीच्यूट के मनोवैज्ञानिक लारेन्स लेशन एक ऐसा ही अविभेद्य उदाहरण देते हैं—"वह सब कुछ जिसका अस्तित्व है......वह निरपेक्ष ही है। ......वह निरपेक्ष ही देश काल निमित्त के माध्यम से आकर (दृश्यमान)... ब्रह्माण्ड हो गया है। यही (मिन्कोवस्की) (अद्वैत) ...का केन्द्र तत्व है। देश काल निमित्त एक ऐसा काँच है, जिसके माध्यम से हम निरपेक्ष को देख रहे हैं और जब भी वह दिखता है तो ....हमें ब्रह्माण्ड के रूप में प्रतिभात होता है। इससे हम तुरन्त ही इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि निरपेक्ष में न तो देश का अस्तित्व है, न काल का और न निमित्त का ही। जिसे हम कार्य-कारण कहते हैं, यदि ऐसा कहा जाय कि वह तो बाद में, निरपेक्ष की जगत्-प्रपंच के रूप में अधोगति होने के बाद ही प्रारम्भ होता है, पहले नहीं।"

ये बातें मूलतः स्वामी विवेकानन्द द्वारा उनके 'ज्ञानयोग' में कही गयी है; परन्तु वस्तुतः देश-काल के सातत्य (Continunm) का सिद्धान्त रचनेवाले गणितज्ञ हरमन मिन्कोवस्की और महानतम ऐतिहासिक ब्राह्मण ऋषि * अद्वैत के नाम परस्पर बदले जा सकते हैं, और यह तथ्य भी अतीन्द्रियवादी दर्शनशास्त्र और आधुनिक भौतिकविज्ञान का संगमन प्रदर्शित करता है।

फिर विवेकानन्द ने और भी एक मत व्यक्त किया है जो क्वान्टम सिद्धान्त का मेरुदण्ड बन गया है, वह यह कि निरपेक्ष निमित्त जैसा कुछ भी नहीं। वे कहते हैं—"एक पत्थर गिरा और हमने प्रश्न किया—इसके गिरने का क्या कारण है ? यह प्रश्न केवल तभी किया जा सकता है, जब यह मान लिया जाय कि बिना कारण के कुछ घटित

*शंकराचार्य

नहीं होता। मेरा अनुरोध है कि इस धारणा को तुम अपने मन में खूब स्पष्ट रखो, क्योंकि जब हम प्रश्न करते हैं कि यह घटना क्यों हुई, तब हम यह मान लेते हैं कि सभी वस्तुओं का, सभी घटनाओं का एक 'क्यों' रहता ही है। अर्थात् उसके घटने के पहले और कुछ अवश्य हुआ होगा, जिसने कारण का कार्य किया। इस पूर्ववर्तिता और परवर्तिता के अनुक्रम को ही 'निमित्त' अथवा 'कार्य-कारणवाद' कहते हैं।"

विवेक चूड़ामणि

—स्वामी वेदान्तानन्द

अनुवादक—डॉ० आशीष बनर्जी

गुरु के निकट ज्ञानलाभ हेतु श्रुति के निर्देश इस प्रकार हैं।

"परीक्षा लोकान् कर्मचित्तान् ब्राह्मणो निर्वेदमाया-न्नास्त्याकृतः कृतेनं। तदविज्ञानार्थं सः गुरुमेवाभिग-च्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।"

(मुः, १/२/१२)

"कर्म द्वारा प्राप्त फल समूह की परीक्षा कर ब्राह्मण समझेंगे कि इस संसार में नित्य वस्तु कर्म द्वारा नहीं प्राप्त की जा सकती है। इस प्रकार समझ कर वे वैराग्य को प्राप्त होंगे एवं नित्य वस्तु को जानने के लिए यज्ञ की लकड़ी हाथ में लेकर वेदज्ञ, ब्रह्मनिष्ठ गुरु के समीप जायेंगे।"

स्वामिन्नमस्ते नतलोकबन्धो
कारुण्यसिन्धो पतितं भवाब्धौ।
मामुद्धरात्मीय कटाक्ष दृष्ट्या
ऋज्व्यातिकारुण्यसुधाभिवृष्ट्या ॥३५

हे शरणागतवत्सल दयासिंधु प्रभो, आपको नमस्कार है। संसार-सागर में पड़े हुए मेरा आप अपनी सरल करुणामृत धारावर्षणकारी स्निग्ध कृपा कटाक्ष द्वारा उद्धार कीजिए॥ ३५

दुर्वारसंसारदावाग्नितप्तं
दोधूयमानं दुरदृष्टवातैः।
भीतं प्रपन्नं परिपाहि मृत्योः
शरण्यमन्यं यदहं न जाने ॥३६

जन्म मरण रूप संसार दावानल से दग्ध जिससे छुटकारा पाना अति कठिन है तथा दूर दृष्टरूप वायु प्रवाह के द्वारा अविकम्पित, मृत्यु भय से भीत मुझ शरणागत की आप रक्षा करें। क्योंकि मैं आपके अतिरिक्त और किसी आश्रय स्थल को नही जानता ॥३६

अतीत जीवन में कृत कर्मसमूह, जिसका आंशिक फल वर्तमान जीवन में भोगना पड़ता हैं उसे अदृष्ट कहते हैं। दूरदृष्ट का अर्थ है अतीत जीवन के बुरे कर्मों के फल की समष्टि।

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो
वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जना—
नहेतुनान्यानपि तारयन्तः ॥३७

(वसन्त-ऋतु जिस प्रकार तरु लताओं में नवीन पल्लव पुष्प एवं फल प्रदान कर जगत के जीवों का सुख वर्धन करती है, उसी प्रकार) वसन्त ऋतु के समान बिन माँगे दाता, राग लोभादि शून्य महापुरुष इस जगत में निवास करते हैं; वे लोग अपने साधनबल द्वारा भयंकर संसार-सागर से स्वयं उत्तीर्ण हुए एवं शरणागत अन्य जनों को भी किसी प्राप्ति की आशा किये बिना ज्ञान-प्रदान कर संसार समुद्र के पार ले जाने हेतु अवस्थान करते हैं। ३७ (क्रमशः)